प्रस्तावना

विद्युल्लता शहा,

सम्यक्त्वकी सुप्रभात मे हमारा ह्दय पूज्य मे ठहर जाये यह भव्यत्व की पहचान है। श्रध्दाके दिये मे जलतीसिध्दभक्ती की यह नन्हीसी बाती आत्मानुभव का प्रकाश फैलाएगी। णमो सिध्दाणं का यह तीसरा भाग वाचकों केलिए प्रकाशित करते हुए मुझे आनंद हो रहा है । पं. संतलालजी ने जो शुध्दात्माके फुल सिध्दगुणों केहारमे गूंथे है उनका सौंदर्य देखने के लिए हमे श्रध्दाकी आंखो से देखना है ।

कुछ लोग मन:शांति के लिए या आत्मानंद के लिए मनपर प्रयोग करते है, जैसे सांस काबूमे लाना, और समझते है कि अतीन्द्रिय अनूभूति हो गई है, यह धारणा ठीक नही है। इसका वीतराग अनुभूतिसे कोई संबंध नही है, क्योंकी वीतराग अनुभूति का दूसरा नाम निर्विकल्प अवस्था है। श्वासोच्छवास पर नियंत्रण मनका विजयगान है, हमे तो आत्माकी तान सुननी है ।

श्री. लालचंदजीने पं. संतलालजी के भावोंको अच्छी तरह स्पष्ट किया है । प्राय: समझा जाता है कि चारित्र मोहनीयका उदय होनेसे आत्मध्यान होता ही नही । जब आत्मध्यान होता ही नहीं तो क्यों करे ? यह तो एक प्रमाद प्रवृत्तीका बहाना है ; हमे तो स्वयंको शुध्दात्म - सरिता मे बहाना है ।

व्यक्तिगत समस्याओंका बोझ ढोते हुए कुछ भक्तगण समझते हैं कि ग्रहस्थी जीवनकी अनुभूतियोंमे इतने उलझे हुए है कि शुध्दात्मानुभव होना हमारे जीवनमे असंभव है, ऐसी धारणा निश्चित होती है । ग्रहस्थ जीवनकी अनुभूतियों को समेटना सही उपाय है । इससे परमतत्त्वसे तादात्म्य स्थापित होता है ।

अनुमान है कि, णमोसिध्दाणं के इस भागका ह्दयसे स्वागत होगा यह भी अनुमान है कि, लालचंदजी अध्यात्म प्रेरित करते रहेंगे । पं. कैलाशचंद्रजी शास्त्री कहते है, यद्यपि समस्त जिनशासन अध्यात्म रुप है उसमे जो भौतिक कर्मवाद का या लोकवाद का कथन है वह भी अध्यात्म प्रेरितही है । किन्तु अध्यात्म प्रेरितमे और अध्यात्ममे अन्तर है । अध्यात्म समुद्र तो समयसार है । उस समुद्रकी ओर बढना है, उसके लिए णमो सिध्दाणं सहाय्यक है ।

भैया भगवतीदासपने णमोकार मन्त्रको समस्त सिद्धियो का दायक बताया है और अहर्निश इसमे जाप करनेपर जोर दिया है । इस मंत्र केजाप करने से सभी - प्रकारकी बाधाएँ नष्ट हो जाती है । कहा है,

जहाँ जपें णमोकार वहाँ अध कैसे आवें ।
जहाँ जपें णमोकार वहाँ वितर भग जावें ।।
जहाँ जपें णमोकार वहाँ सुख सम्पति होई ।
जहाँ जपें णमोकार वहाँ दु:ख रहे न कोई ।।
णमोकार जपत नवनिधी मिलै, सुख समूह आवे निकट ।
भैया नित जपवो करो, महामंत्र णमोकार है ।।

यह णमोकार मंत्र सभी प्रकारकी आकुलताओंको दूर करनेवाला और सभी प्रकार की शांति एवं समृध्दिंयोंका दाता है । इसकी अचिन्त्य शक्ति के प्रभावसे बडे, बडे कार्य क्षण भर में सिव्द्ध हो जाते है । जिस प्रकार रसायन के सम्पर्क से लौह भस्म आरोग्यप्रद हो जाता है । उसी प्रकार इस महामंत्र की ध्वनियों के स्मरण मननसे सभी प्रकार की अदभुत सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है । आचार्य वादीभसिंह ने क्षत्रचूडामणि में बताया है

मरणक्षणलब्धेन येन श्वा देवताऽजनि ।
पंचमंत्रपदं जपयमिदं केन न धीमता ।।

अर्थात् मरणोन्मुख कुत्ते को जीवन्थर स्वामीने करुणावश णमोकार मंत्र सुनाया था इस मंत्र केप्रभाव से पापाचारी श्वान देवता के रुपमें उत्पन्न हुआ । अत: सिद्ध है कि यह मंत्र आत्माविशुध्दि का बहूत बडा कारण है ।

ओम ऱ्हीं शुध्द निपाताय नम:

निपातका शब्दकोशमे अर्थ है नीचे गिरना उतरना । शब्द कोशमे लौकिक है । यहां तो सिध्द जावोंके अलौकिक गुणोंकी चर्चा चल रही है । जो सिध्द लोकमे स्वभावत: जा चुके है वे कैसे गिरेंगे ? जो १४ गुण स्थान भी चढ चुके है, वे क्या उतरेंगे ?

निपात अव्यय है । अव्ययको जैसे प्रकृति प्रत्यय नहीं लगता उसी प्रकार आत्मा ध्रुव अव्यय (उत्पाद व्यय रहित) रहता है, स्वभावत: शुध्द रहता है, कभी अपूर्ण नही होता , सदा ही पूर्ण रहता है, एकरुप होता है, नित्य विद्यमान होता है । शुध्दात्माकी महिमा यहां चल रही है । इसी लिए तो पंडितजी भी कहते है शुध्द द्रवयकी बात घर गृहस्थी की , व्यापार की, बात नही। कैसा है शुध्दद्रव्य ? कहते है आदि अंत वर्जित अव्यय कहिए , आदि अंत वर्जित कहिए एकही बात है ।

ओम -हीं शुध्द गर्भाय नम : ।

निमित्तसे यह कहा जाता है कि, धर्मास्तिकायके अभावमें लोकाग्रके आगे सिध्दजीव जा नही सकते । जीव द्रव्यकी उपादान शक्तीही स्वभावसे लोकाग्र भाग तक गमन करने की है । सिध्द जीव लोकाग्र मे जाकर ठहरते है । यह लोकाग्र का अनंतवां भाग भी चैतन्यसे भिन्न है । वहां ठहरकर जीव । सिध्द शोभते है, अंत: वही उनका गर्भ है ।

ओम -र्हीं शुध्द वासाय नम : ।

अब सिध्द जीवोंके रहनेकी बात चल रही है । सामान्यत: जीव कहां रहता है, इस प्रश्नका उत्तर तीन तरह दिया जा सकता है । कहां रहता है जीव ?

१) अपने गुणोंमे - सिध्द जीवकी आगे पर्याय क्या होगी सिध्द जीवोको अब क्या होना शेष है ? अर्थात् कुछ नहीं ।

२) अपने प्रदेशमे - एक द्रव्य दूसरे द्रव्यमे घुसे ऐसा वस्तुका स्वाभाव नहीं है । अत:द्रव्य अपने ही प्रदेश मे रहता है ।

३) अपने स्वभाव मे - द्रव्य अन्यका स्वभाव किंचिन्मात्र भी स्वीकार नहीं करता, यह द्रव्यका स्वभाव है । तो सिध्द जीव अपने शुध्द स्वाभावमे लोकाग्रमे अनंत काल तक रहते है । निश्चयदृष्टीसे देखा जाय तो सिध्द जीव निजात्मामे ही रहते है ।

ओम -र्हीं विशुध्दपरमवासाय नम :-

विशुध्द शब्दके चार है १ निर्मल, २ निष्पाप ३ शुध्द ४ सही सिध्द जीवोंके रहनेकी ही बात आगे चल रही है, जहां मल न हो वहां सिध्द जीव रहते है । मल क्या है ? कर्म मल है , पाप न हो वहां सिध्द जीव रहते है । पाप क्या है ? जो आत्माको गिराए वह पाप है । सिध्द जीव तो आपने स्वभावसेही लोकाग्रमे जा विराजमान हुए है, तथा नीचे आने के कारणों के कारणोंका उन्होंने सर्वोपरी नाश किया है अत: लोक शिखरपर शाश्वत विराजमान है । आगेके दो अर्थ भी मिले जुले है । शुध्द उसे कहां जाता है जिसमे मिलावट न हो । सिध्द जीवके सर्व कर्म पूर्णत: - नष्ट हो चुके है तो अशुध्दता कहां रही मिलावट परद्रव्यकी होती है सिध्दों केतो निरंतर शुध्द स्वभाव है । शुध्द रहना ही उनका स्वभाव है ।

देखो कितनी अलौकिक बात है । सिध्द जीव कहां रहते है इसका और एक जवाब मिल गया । कहां रहते है सिध्द जीव ? निजधर्म मे रहते है । वही उनका परम वास है। क्यों ? अन्य द्रव्य अणुमात्रभी नहीं होने से परधर्म नहीं रहा । जो कुछ है स्व धर्म है, सही है । स्वधर्म मे मुक्त जीव रहते है। या ऐसा कहो, जो सदाके लिए स्वधर्म मे रहते है वे मुक्त ही होते है । स्वधर्म और मुक्त जीव अविनाभावी है ।

परम का अर्थ श्रेष्ठ होता है। सिध्द लोक से कोई श्रेष्ठ स्थान त्रिलोकमे नही है । परवास और परमवास दो शब्द है । अेकही अक्षरका अंतर है । उससे अर्थमे चमत्कार हुआ है। परमवासका अर्थ है, पर मे रहने से भावार्थ है परकी आसक्ति होना । परम वासका अर्थ है श्रेष्ठ स्थान । श्रेष्ठ स्थान कौनसा ? जाहं शुध्दता हो वह स्थान । परमे रहनेवाला जीव परमवासका सन्मान नही ले सकता क्यों ? परवासमे सुख नही, शांति नही ।

ओम -हीं शुध्द परमात्मने नम: - ।

सोचने की बात है कि, परमात्मा तो शुध्द होता ही है, फिरभी उसे शुध्द कहना क्या अर्थ रखता है ? हां है । लक्ष्यपर से ध्यान न हटे इसलिए ऐसाही किया जाता है । किसी एक गुणको प्रकर्षेण बता नेके लिए भी यही रीत स्वीकार्य है । यहां तो सिध्द जीवोंमे शुध्दता है । उसको बतानेके लिए अैसा कहते है । शुध्द परमात्माको नमस्कार

परमात्माका शब्दार्थ श्रेष्ठ आत्मा, पवित्र आत्मा है । स्वरुप बताने के लिए कई शास्त्र लिखे गये । भक्तोंकी भी महिमा कम नहीं है । बहोत सारे शास्त्रोंसे हमे क्या ? हम तो केवल एक ही व्याख्याकि संक्षिप्त चर्चा करेंगे जो वीतरागताकी और बढाए ।

परा सर्वोत्कृष्टा मा अंतरंग बहिरंग लक्षणा अनंतचतुष्टयादि समवसरणादिरुपा लक्ष्मीर्येषां ते परमा:ते च ते आत्मान: परमात्मन: । जिन्हे ऐसी लक्ष्मी प्राप्त हो वे परमात्मा है । कैसी लक्ष्मी ? अंतरंग अनंतचतुष्टय, बहिरंग समवसरण अैसी लक्ष्मी । बहिरंग लक्ष्मी का तो बाहरसे संबंध है और नियत काल तक ही । किंतु अंतरंग लक्ष्मी शाश्वत है ।

कई विद्वान मा का अर्थ लक्ष्मी करते है अनुचित नहीं है, फिर भी वह लक्ष्मी है जिसका लक्षण वह परमात्मा, यह अर्थ अधिक ठिक बैठता है । शब्दशास्त्र बडा भंडार है । उसमे से हमे जो लेना योग्य है वही लेना, अन्यसे क्या लेना देना ? तो सर्वोत्कृष्ट जिनका लक्षण है वह परमात्मा है: यह सर्वोत्कृष्ट लक्षण का लक्षण क्या है ? अनंत चतुष्टय । अहो अनंत चतुष्टयकी बातही अनंत है । न विद्यते अन्तो विनाशो यस्य तदनंतम् ऐसा धवल ग्रंथ मे कहा है। सहज शुध्दनिश्चयेन अनाद्यनिधनामूर्तातीन्द्रियस्वभावशुध्द सहजज्ञान सहजदर्शन सहजचारित्र सहजपरमवीतराग सुखात्मकशुध्दान्तस्तत्वस्वरुप स्वभावान्तचतुष्टयरुपेण ... . नियमसारमे कहा है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और सुखको सहज कहा है । अनंत के स्थानपर सहज कहा है ।

ओम -हिं शुध्द अनंताम नम:

देखो, भक्तकी महिमा भी अनंत है । उसने तो अनंत मे भी शुध्द विशेषण लगाया है। अनंत है उसमे शुध्द क्या अशुध्द कया ? अनंत शक्तीका पिंड चैतन्यमूर्ति आत्मा है, उसमे शरीर, मन, वाणी या कर्म तो तीन कालमें कभी रहे नही ; पर्यायमे एक समय पर्यताक विकार तो अनादिकालसे रहा है, परंतु वह विकार कभी आत्माके स्वभावरुप नही हो गया, क्षणिक विकार के समय भी नितस्थायी स्वभावका अभाव नही होता । यही अनंतमे शुध्दता है । स्वभाव तो त्रिकाल अनंतशक्तिका पिण्ड ज्यों का त्यों है । उस त्रिकाली स्वभावकी प्रतीति करनेसे परिणमनमें स्वरुपका लाभ होता है द्रव्य गुण तो त्रिकाल ज्यों के त्यो है ही , परंतु उनका स्वीकार करते ही पर्यायमे उसका लाभ होता है अर्थात् निर्मल परिणमन होता है ।

ओम -हिं शुध्द शांताय नम :

सिध्द जीव स्वरुपमे स्थिर रहते है । स्वरुप कंपित न हो ऐसी आत्माकी शक्ति होती है। उस शक्ति से जीव शांत होता है । अनंत कालतक मुक्त जीव शांती से रहते है । क्यों ? इसलिये कि वे निजरस का ही स्वाद लेते है । राग व्देष मोहादि विकार संपूर्णत: नष्ट होने से अखंड शांति होती है । जूझना हो तो शांति भंग होती है । मुक्त जीवोंको किससे जूझना है ? किसीसे भी नहीं किससे भी नहीं । त्रिलोक मे जितने भी जीव है उनके प्रति करुणाभाव धारण किया है जिन्होंने ऐसे सिध्द जीव होने से कौन शत्रु होगा ? अर्थात् कोई नही । सब कर्मोका मूलत: नाश करने से कृतकृत्य होते है । अंतर्मन मे अख्ंड शांति का स्त्रोत होता है । स्वरुप जैसा है वैसा ही है, उसका स्वाद अगर लेना हो तो स्थिर होना स्वाभाविक है । स्थिरता के आश्रय से सिध्द जीव परम शांत होता है । आत्मा ज्ञानस्वरुप है उसका परिणमन स्वभाव उत्पाद व्यय ध्रुवरुप सत्तामय है । कोई शंका करे कि उत्पादव्यय है तो शांति कैसी ? स्वभाव मे ही परम शांति है , उस स्वभाव मे उत्पाद व्यय होना भी स्वभाव होने से शांति भंग नही होती ।

ओम -हिं शुध्द विदंताय नम : ।

विद का अर्थ है पंडित । उसका जो अंत वह विदंत । पंडित का अंत , चरमसीमा है । अर्थात् ज्ञान की चरमसीमा । क्या होता है ज्ञानकी चरमसीमा से ? स्वयंको स्पष्ट होता है ।

पंडिताई की चरमसीमा या ज्ञानकी चरमसीमा केवल ज्ञान है । यहां केवलज्ञानकों नमस्कार किया है । कैसा है केवलज्ञानी ? आचार्यदेव केवलज्ञानको नमस्कार करते हुए कहते है

क्षायिकमनन्तमेकं त्रिकाल सर्वार्थयुगपदवभासम्

सकलसुखधामसततं वन्दे ऽ हं केवलज्ञानम्

अधीक कहनेसे क्या ? त्रिकाल सर्वार्थयुगपदअव भासम् सबसे महत्वपूर्ण बात है । त्रिकालके सब द्रव्योंको एकसाथ जाने ऐसा केवल ज्ञान है । सब द्रव्योको जाने ? सामान्यत: यह असंभवसा दीखता है । परंतु आवरणरहित होना समझे तो असंभव नहीं है । व्यवहार नयसे कहा जाता है कि ज्ञानावरण कर्म नष्ट हुआ और केवलज्ञान हुआ । निश्चयनय से तो आवरण है ही नही । स्वयंप्रकाशी स्वयंभू आत्मा तो विराजमान है ही । यह तो समझानेकी बात है । कैसे समझाएं ? कहते है केवल ज्ञान सर्व भाव ग्राहक है । केवलज्ञान युगपत् सर्वार्थविषयम् ऐसी भी व्याख्या है । सव्वभाव गद ऐसाभी एक विशेषण है । परिपूर्ण, समग्र, असहाय, अनंत ऐसे कई विशेषण है । थोडे मे कहना होता यह कहेंगे कि, आत्मा को लक्ष्य करके उसे प्रसिध्द करे वह सर्व श्रेष्ठ है ।

ओम -हिं शुध्दज्योतिजिनाय नम : ।

अब शुध्द ज्योतिस्वरुप जिनेश्वर को नमस्कार किया है ।इस ज्योति को कौन प्रकाशमान करता है ? नही भाई , पर का काम कौन करे ? शुध्द ज्योति से मतलब शुध्द ज्ञान उसे कौन प्रकाशित करे ? वह तो स्वयं प्रकाशमान है । कैसी प्रकाश मान है ? विशद ऐसी स्व संवेदनमयी प्रकाशमान है । देखो भाई, उपमादिक अलंकारोके द्वारा समझाना एक कला है ? कला क्यों ? इसलिए कि विषयको समझाना सहज होता है यह अध्यात्म अलौकिक बात है । बहुचर्चित नहीं होने से सुगमतासे समझ में नही आती ।

ज्ञानको समझाने के लिए ज्योतिकी उपमा दी गयी है । शुध्द ज्ञान हो और छूटे ऐसा संभव नही है । ज्ञान होता है ऐसा भी निमित्त से और समझानेके लिए कहते है । वास्तवमे तो ज्ञान जैसा है वैसा है ही, वैसा ही है और जैसा है वैसा है ही है । समझने की बात है, ज्ञान अब हुआ तो पहले कहां गया था ? क्या आत्माको छोडकर कहीं और रहता है । नहीं भाई नहीं। ज्ञान तो आत्माका स्वभाव है और स्वभाव तो स्वयं अपने से अनुभव में आये और प्रत्यक्ष अनुभवमे आये ऐसा है । अैसाही आत्माका त्रिकाली सामर्थ्य है । कहते है स्वानुभूत्या चकासते चिदानंद मूर्ति भगवान आत्मा शुध्द ज्योतिरुप स्वयं अपने स्वभावसे प्रकाशमान है । भाई आत्मध्यान करो ; आत्मध्यान से बढकर कोई भी वस्तु इस लोक मे मनोहर नहीं है । क्या होता है आत्मा का अवलंबन लेने से ? आत्मा तो स्वभावसे स्वयं प्रकाशमान है ; ऐसे आत्माका अवलंबन लेने से पर्यायसे भी पराश्रित ज्ञान तथा राग का अभाव सहज है कहने से बात ध्यान मे आई । कुछ लोग थोडासा ध्यान करते है । और कहते है आत्माके ध्यानसे हमे प्रकाशका

पुंज दिखाई दिया ; बहुत तेजमयी था वह कहते है लोग ; किन्तु सोचनेकी बात तो ये है कि, आत्मा अगर चैतन्यप्रकाशी प्रभु है ; वह स्वयं अपने को यथार्थ रुपसे जान सकता है ; स्वयं अपना साक्षात् अनुभव कर सकता है ; और अतीन्द्रिय है तो उसे किस इन्द्रियने देखा ? क्या इन्द्रियसे समझाने की चीज है ? नहीं भाई नहीं । तो यहां निरालंब स्वयं ज्योतिरुप शुध्दज्ञान धारी जिनेश्वर को नमस्कार है ।

ओम -हिं शुध्द निर्वाणाय नम: ।

भाई, यहां हम पहले ही प्रश्न करते है । क्या निर्वाण मे भी अशुध्द शुध्द होता है ? नहीं उसमे अशुध्द शुध्द ऐसा भेद नही है सिध्दों के गुण शुध्द होते है, या यूँ कहिए कि सिध्द भगवान शुध्द गुणोंका चिन्मय पिड होते है । उस शुध्दता को प्रकर्षेण कहने केलिए शुध्द कहा है ।

क्या होता है निर्वाण ?

शास्त्रोंमे आता है, पारतंत्र्य निवृत्तिलक्षणं निर्वाणम् शुध्दात्मत त्वोपलम्भरुपस्य , ...

... इस व्याख्यामे शुध्दात्मतत्वोपलम्भ विशेष है । एकही बातको अनेकों बार दोहराने से तिरस्कारण भाव भी हो सकता है, क्या शुध्दके विषय मे ऐसा होगा ? नहीं, मुमुक्षु जीव समझेगा और झूम उठेगा आनंदसे कि, देखो कैसे है मेरे सिध्द भगवान ? आनंद कोई स्वर्गकी चीज नहीं है वह तो अंतर्मन का सहज स्वीकार है, और वह इस वर्तमान भव मे होता है ।

जिस जीव को यह स्वीकार नहीं है वह तो मानो चातक की तरह अपने भीतर के बिन्दु से अपरिचित, आकाशकी ओर ताकते है और कहते है, हे ईश्वर , झोली भर दे । यहां तो कहते है आत्मतत्वोपलम्भ और वह भी शुध्द । निर्वाण मे जीव कुछ खोता नहीं वह तो पाता है ? क्या पाता है । यहां दूसरी व्याख्या है स्वाधीनीतीन्द्रियरुपपरमज्ञानसुखलक्षणं निर्वाणम् स्वाधीन और अतीन्द्रिय सुख पाता है । पारतंत्र्य क्यों मिला ? क्या ये भी कहने की बात है ? अरे भाई स्वरुप प्रच्यवनात् संसरत: संसरण क ा अेक अर्थ खिसकना भी है, स्वातंत्र्यसे खिसक गये तो परतंत्र हो गये । तो शुध्द निर्वाण मे जीव का सकल कर्म विमोचन होता है । और सकल कर्म विमोचन तो जीव की सम्यक् साधनाका फल है, जो शाश्वत सुखका भंडार है ।

ओम -हिं शुध्द संदर्भ गर्भाय नम: ।

सिध्द जीवों की चर्चा है । ऐसी चर्चा को किसकी उपमा दी जाय यह असंभव है । कर्म है तो होना । कर्म ही न हो तो या कर्म हीन हो तो

(शब्दालंकार - शब्द चमत्कृति - कर्महीन तथा कर्म हीन) क्या होना है ? अर्थात् कुछ नहीं । अेक भी कार्य बचा हो तो निर्वाण नहीं । यहां तो समूचे कर्म नष्ट हो चुके है । अज्ञानी जीव समझते है कि कर्मोका नष्ट होना शून्य है । क्यों ? उन अज्ञानी जीवों को क्या खबर है कि कर्मका सर्वथा नाश होने पर दिव्य आनंद है । कर्म नाश होने पर जो अवस्था होती है उसका हमें क्या अनुभव ?

एक भाईने हमें पूछा था, सिध्द जीवों के तो आंखे नहीं है फिर क्या देखते होंगे ? जिव्हा भी नहीं है तो क्या चखते होगे .... अहा रे अज्ञान ! ! अतींद्रिय सुखकी महिमा ओ क्या जानें ? सिध्द अवस्था हो गई तो कहांसे आना और जाना ? पूजा मे हम बोलते है, जन्म, जरा मृत्यु विनाशाय; तो हम विनाश किसका चाहते है ? जन्म , जरा या मृत्यूका ?

एक संवाद है - अ - क्या, आपको मृत्यु नहीं चाहिए ?

ब - नहीं, कभी नहीं ।

अ - तो आपको जन्म चाहिए ?

ब - हां, उससे तो , ठीक है ।

अ - लेकिन जन्म तो मृत्यु के बाद ही हो गा जा ओ म रो।

ब - (इति, मौन ,)

एक को चुनो, चाहे दो को, होते तो दोनों ही है । आप धर्म करते है तो क्या मृत्यु नहीं, होगी ? चलो छोडो इन बातों को । सिध्द जीवोंके सब कर्म नष्ट हो चुके है, या यूं कहिए जिनके सब कर्म नष्ट हो चुके हो, वे सिध्द जीव है ; फिर गर्भ की बात, ही नहीं। सिध्द जीव तो अपने शुध्द स्वरुप मे मस्त है ।

ओम -हिं शुध्द शांताय नम :

कर्म जनित संतापके उपशम को शांति कहते है । हम तो सब जानते है कि कर्म का उदय किसीके हाथ नहीं । जब उदय होता है तो अंतर्मन मे कुछ उथल पुथलसी होती है । कोलाहल कहिए। कोलाहल यही हलाहल है । कोलाहल नहीं हो वही शांति है ।

अेक और सूक्ष्म बात है । लोग धर्म , व्रत आदि करते है । उद्देश पूछ जाने पर कहते है कि हम आत्मशांति के लिए करते है । क्या सही शांति मिलती है ? हां इतनी बात है कि दु:खका अनुभव कम हो जाता है । क्या दु:खका अनुभव कम होना यही शांति है ? दुख का दूर होना यही शांति है तो जिनके पास अत्याधुनिक सुख साधनोंकी भरमार है वह शांति पाता। वास्तविकता तो यह है वही जादा अशांत है । दुख दूर होनेपर भी शांति दूर ही है । शांति दुख तो क्या सुख को भी छोडकर दूर खडी हुई देवता है ।

सिध्दिप्रिय नामक स्तोत्र मे मुनिश्री देवनन्दि कहते है ; शांतिः पदं दिशतु मे ऽ गत कामिनीति । शांतिनाथ भगवान मेरे लिए (अगत - कामिनीती पद.) कामिनी व कष्टोंकी पहुंच रहित पद को प्रदान करें । इससे तो सिध्द है कि कामिनी आदिमे सच्चा सुख नही है । कष्ट की पहूंच क्या है ? एक कथा है । एक साधु था । उसके पास एक अमृत कुंभ था । राजा के पास आया और कहने लगा राजन्, यह अमृत कुंभ मै आपको देना चाहता हूं । राजाका मंत्री चतुर था । उसने कहा, हमें अमृत कुंभ नहीं चाहिए । अमृत बनाने की सिध्दि चाहिए । साधूने कहा, उसमे कष्ट बहुत है । तुरंत मंत्रीने कहा, जो कष्टसे निर्मित हो वह क्या अमृत होता है ? कष्ट रहित पद चाहिए । केवल पदकी ओर आकृष्ट होनेसे क्या लाभ ?

सिध्द जीव तो कर्म- मुक्त है । परम शांति, तो वही है । कर्म के अभावमे शांति है ऐसा व्यवहार नयसे कहा जाता है । निश्चय नय तो कहता है ध्रुवमे स्वतःस्वयं सिध्द है । हमे कर्म का परिचय है तो कहते है कर्म के अभाव मे सिध्द है ।

परमशांत सिध्द जीवोंको नमस्कार हो ।

ओम -हिं अरहंतजिनसिद्धेभ्यो नम :

धवलमे कहा है, रहस्याभावाद्वा अरिहंता । अर्थ है, रहस्य के अभाव से भी अरिहंत होते है । रहस्य अंतराय कर्म को कहते है । अंतराय कर्म का नाश शेष तीन घातिया कर्मो के नाशका अविनाभावी है, और अंतराय कर्म के नाश होनेपर अघातिया कर्म भ्रष्ट बीज के समान निःशक्त हो जाते है । ऐसे अंतराय कर्म के नाश से अरिहंत होते है । अरिहंत होनेपर सिद्ध होते ही है । शब्द के अर्थ को मोल देनेसे भाव भी बदल जाते है । सर्वज्ञ हो जानेपर जिनके लिए कोई भी पदार्थ रहस् (गुप्त) नही रहा है, अर्थात जिनके सर्वगत ज्ञानसे कुछ भी बचा नही है वे अरहंत जिन कहलाते है । देखो, रहस्य का अर्थ बदलने से भाव बदल गया ; यह भी कोई रहस्य की बात नही है । यह तो भाव बदलजाने पर भी कोई आपत्ती नहि है । सिद्ध भगवान् का गुणगान चल रहा है, तो सिद्ध भगवान कैसे बनें इसकी चर्चा तो चलेगी ही । रहस् शब्द का अर्थ अन्तर भी होता है और अरहस् शब्द का अर्थ अनंतर - अन्तर से रहित (अनादि) होता है । शब्द के अर्थ से भाव को बदल देना यह भी एक कला है । जहांतक सिद्धोंकी चर्चा का प्रश्न है, कहना होगा कि प्रत्येक शब्द के अर्थ को सिद्धों के गुणों की ओर ले जाना अतिशय कला है ।

जिन शब्द अनेकोबार आयेगा । इसलिए समयोचित तो यहि होगा की, जिन शब्द के अर्थ का थोडा चिंतवन करें। अनेक ग्रंथोमे जिन शब्द की व्याख्या की गई है । सब ग्रंथों की व्याख्यांए देना आवश्यक नहि है । केवल कुछ महत्वपूर्ण व्याख्याएं देखे । सामान्यत: जिन्होने क्रोधादि कसायोंने जीत लिया है, वे जिन कहलाते है । कैसा बना है जिन शब्द शब्द कैसा बना, बजाय इसके जिन (जिनदेव - जिनेश्वर) कैसे बने यह देखना प्रेरक होगा । जिन बनना जिनके वश है उनको अधीक प्रेरणा देनेपर हमे विवश होना है । शास्त्रोंमे आता है, जि जये अस्य औष्मादिक - नक प्रत्ययान्तस्य जिन इति भवति, रागादि जयाज्जिन इति, इसमे जिन शब्द कैसे बना यह बतलाकर रागादि कषायोंको जिन्हानें जित लिया है उनको जिन कहा है । जीतनें को बहुत है फिरभी कुछ नाम इस प्रकार है ।

१) क्रोध २) मान ३) माया ४) लोभ ५) राग ६) द्वेष ७) कषाय ८) मत्सर ९) मल
१०) उपसर्ग ११) परिषह १२) कर्म १३) घातिकर्म १४) कृत्स्नकर्म १५) मोहमहामल्ल
१६) कर्मेधन १७) मोहावरण १८) कर्ममहाभट १९) कालचक्र २०) कामक्रोधादिदोष
२१) विषय व्यसन २२) अतरंगरिपु २३) रागदिशत्रु - इ. इ. । इन इत्यादि नामोंसे तो मुमुक्षु जीव समक्ष बैठेगें कि, अहो, इन सबको जीतने का तो हममें सामर्थ्य नहीं है । हमारा जो होना है सो होने दीजिए । नहीं भाई नहीं, ऐसे निरुत्साहित नहीं होना । आप तो वीरोंकी संतान है । आत्मा मे अनंत बल है। एक शुध्दात्म चिंतन मे रमे रहो, ये सब छोडने योग्य भाव स्वयं छूट जाते है, छोडनेका विकल्प भी करना नही होगा । प्राणियोंकी एक चिंतनप्रणाली, जो अपनी ही अपनी होती है, उसके अनुसार श्रध्दा होती है ; उस चिंतन मे यह रखो कि, मै ही शुध्द हूं (इन षट् द्रव्योंके जंजालमे) मै शुध्द ही हूं (कर्मोका आवरण होते हुए भी) मै शुध्द हूं ही (परतंत्र कब हुआ हूं ?) बस, इन सब छोडने योग्य भावों से छुटकारा होगा। मै शुध्द हूं ऐसा शुध्द द्रव्य का निर्णय हुआ तो वहां शुध्द पर्याय होती है । ऐसा कहिए, यह आत्मा की भाव शक्ति है । यह भाव शक्ति आत्माका रागा दि से और परसे भिन्नत्व तथा वर्तमान निर्मल पर्याय के साथ एकत्व बतलाती है ।

आत्मा के शुध्द स्वाभावमे विकारका अभाव है और उस स्वभाव मे एकाग्र हुई निर्मल पर्यायमे भी विकारका अभाव है । जीतना यह तो उपचार कथन शैली है । रागादि स्वतंत्र है और मै स्वतंत्र हूं । किसी की स्वतंत्रता मे कोई भी बाधक नहीं है । सही देखो तो विकार है तो केवल एक समय की मलिन अवस्था में ; त्रिकाली स्वभाव मे मलिनता कहां ? त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से आत्मा मे रागादिका शून्यपना है । ऐसे रागादिक से शून्य श्री सिध्दभगवान को अंतर्बाहय शुध्दी से नमस्कार हो ।

ओम -हीं अवधि जिन सिध्देभ्यो नम: ४ - २ - ५८

ओम -हीं परमावधिजिनसिध्देभ्यो नम : ४ - ३ - ५९

ओम -हीं सर्वाबधि जिनसिध्देभ्यो नम : ४ - ४ - ६०

ओम -हीं अनंतावधि जिनसिध्देभ्यो नम : ४ - ५ - ६१

हम तो सिध्द भगवान्का कीर्तन कर रहे है । हमारी शक्ति और भक्ति इन दोनों मे युध्द चलता है । जब शक्ती कम होती है तो भक्ती से विव्हल होते है किंतु कुछ कर नहीं पाते। जब भक्ती कम होती है तो शक्ती का अपव्यय होता है। दोनोंकी टालना है तो गुण गाते चलो । कम या अधिक इसकी चिंता फिकर न करे। चिंता से अभिव्यक्ती सही नहीं होती। एक मनचले को दूसरेने पूछा भाई , आप प्रभू गुण क्यों नहीं गाते ? । इसपर उसका उत्तर था, जहां सकलवाङ मयतत्वबोधात् उद्‌भूत बुध्दि पटुभि: .... भी गा नहीं सकते तो हम क्या गा सकते हैं ? क्या गा सकते है ? इसलिये हम नहीं गाते। सारांश है कि गुण गाते ही चले।

अण्णाणवि

वित्तीए ते विज्जाहरजिणा णाम। (अवधिज्ञान स्वरुप जो जिन वे अवधि जिन है। जो सिध्द हुई विद्याओंसे काम लेने की इच्छा नहीं करते, केव्रल अज्ञान की निवृत्ति के लिए उन्हे धारण करते है, वे विद्याधर जिन है।) यहां अवधि जिनकी चर्चा है।

सही देखो तो अवधिज्ञान केव्रलज्ञान की तुलनामे क: पदार्थ है । श्रीसमन्तभद्राचार्य स्तुतिविद्या मे कहते है यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते ।। १०५ ।। अवधिज्ञान तो सीमाज्ञान कहा जाता है ; क्योंकि वह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा रखता है तथा सीमासे युक्त अपने पदार्थको जानता है । वैसे देखा जाय तो आत्माकी सिध्दि के लिए मतिश्रुत ज्ञान निश्चित कारण है। अवधिमन: पर्यय के बिन मोक्ष हो सकता है। फिरभी जिन है तो अवधिज्ञान स्वरुप हैं। सिद्ध जीवोंको संक्लेश भाव नहीं होता इसलिए सहजही जो अवधि होती वह भी पूर्ण रुपसे अमल होती है ।

परम शब्दका अर्थ ज्येष्ठ है । परम ऐसी जो अवधि वह परमावधि है । परम अर्थात असंख्यात लोकमात्र संयमभेद ही जिस ज्ञानकी अवधि अर्थात मर्यादा है वह परमावधि ज्ञान है। सर्व का अर्थ केव्रल ज्ञान है, उसका विषय जो-जो अर्थ होता है, वह भी उपचारसे सर्व कहलाता है । सर्व अवधि अर्थात् मर्यादा जिस ज्ञानकीं होती है वह सर्वावधिज्ञान है । यहा सर्वशब्द समस्त द्रव्यका वाचक नहीं ग्रहण करना चाहिए क्यों कि जिसके परे अन्य द्रव्य न हो उसके अवधिपना नहीं

बनता । शास्त्रमे स्पष्ट कहा है, सर्वाविधयश्च ते जिनाश्च सर्वावधि जिना:। अर्थात सर्वावधिस्वरुप जिनोंको सर्वावधि जिन कहते है । ..... सर्व शब्द सर्व के एक देशरुप रुपी द्रव्य मे वर्तमान ग्रहण करना चाहिए ।अथवा जो आकुंचन और विसर्पणादिकों को प्राप्त हो वह पुद्गल द्रव्य सर्व है, वही जिसकी मर्यादा है वह सर्वावधि है । ऐसी है परमावधि और सर्वावधि । आगे कहते हैं अन्तश्च अवधिश्च अन्तावधी न विचेते, तो यस्यसि अनंतावधि: (तो शब्द यहां कैसे आया हमे ज्ञात नहीं है) अर्थात अन्त और अवधि जिसके वही है वह अनंतावधि है । इस तरह परम सर्व और अनंत है ।

हम केवल ज्ञान की चर्चा छोडकर अवधिज्ञानकी चर्चा कर रहे है ? बढे हुए चरणोंका बढना जानना कोई दोष नही है। हमे भी प्राप्त जीवनक्रम से कुछ ऊपरकी ओर उठना है; इस लिए बढे हुए चरणोंको ढूंढना कोई दोष नहीं । वह तो कर्तव्य ही है । चरित्र उनका देखें - जाने जिन्होंने निर्मल चारित्र प्राप्त कर लिया है । हमें भी निर्मल चारित्रको संवारना है। देखो,निर्मल चारित्रको धारण करना बिना कष्टके नहीं होता वह तो वीरो कॉं काम है । फिरभी यहां इतना जरुर कहना होगा कि निर्मल चारित्र कठिन है; हम तो सामान्य मानव है, हमारी शक्ती ही क्या? ऐसा कहना या ऐसी मनोधारणा कर लेना कोई अच्छी बात नहीं है। जितने महान् हुए है, वे मानव ही थे; चारित्रको अच्छी तरह धारण कर वह महान् बन गये ।

ऐसे महान् सिद्धोंको नमस्कार हो ।

ओम -हीं कोष्ठबुद्धिऋद्धिसिद्धेभ्यो नम: ४/६/६२

ओम -हिं बीजबुद्धिऋद्धिसिद्धेभ्यो नम: ४/७/६३

ओम -हिं पादानुसारिणीऋद्धिसिद्धेभ्यो नम: ४/८/६४

ओम -हिं संभिन्नश्रोतृऋद्धि सिद्धेभ्यो नम: ४/९/६५

भव्यात्मन् , योगिजन आत्मस्थ होकर तपश्चरण करते हैं तो उन्हे कुछ चमत्कारिक शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं। किन्तु यहां ऐसा नहीं समझना चाहिए कि, ऋद्धि प्राप्त करने के लिये ही वे तपश्चरण करते हैं। वीतरागता की ओर बढते चरण वापस नहीं लौटते ।

शास्त्रों मे आता है, उत्कृष्ट धारणा से युक्त जो कोई पुरुष गुरुके उपदेशसे नाना प्रकारके ग्रंथोंमे से विस्तारपूर्वक लिंगसहित शब्द रुप बीजोंको अपनी बुद्धि मे ग्रहण करके उन्हे मिश्रण के विना बुद्धि रुपी कोठे मे धारण करता है, उसकी बुद्धि कोष्ठ बुद्धि है । शालि, ब्रीहि, जो और गहूं आदि के आधारभूत कौथली, पल्ली आदिका नाम कोष्ठ है । समस्त द्रव्य व पर्यायों को धारण करनेरुप

गुणसे कोष्ठ के समान होनेसे उस बुद्धिको भी कोष्ठ कहा जाता है । कोष्ठ रुप जो बुद्धि वह कोष्ठ बुद्धि ।

यह ऋद्धियां कर्म के क्षयोपशमसे प्राप्त होती है ।

बुद्धि ज्ञानको कहते है । नो इंद्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण और वीर्थातराय, इन तीन प्रकारकी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट क्षयोपशम से विशुध्द हुए किसी भी महार्षिकी जो बुध्दि, संख्यात स्वरुप शब्दों के बीचमे से लिंग सहित एक ही बीजभूत पद को पद के उपदेश से करके उस पदके आश्रय से संपूर्ण श्रुतको विचारकर ग्रहण प्राप्त करती है, वह बीज बुध्दि है ।

यहां ऐसी शंका हो सकती है, श्रुतज्ञान समस्त पदार्थो को नहीं जानता । क्योंकि पदार्थो के अनंत वे भाग प्रज्ञापनीय है और उसके भी अनंतवे व्दादशांग श्रुतके विषय है । समाधान ऐसा है और कि समस्त पदार्थोका अनंतवां भाग द्रव्यश्रुतज्ञानका विषय भले ही हो, किन्तु , भाव श्रुतज्ञान का विषय समस्त पदार्थ है ; क्यों कि ऐसा माने बिना तीर्थकारों के वचनातिशय के अभावका प्रसंग होगा ।

पदका जो अनुसरण या अनुकरण करती है वह पदानुसारी बुद्धि है । बीजबुद्धि से बीजपद को जानकर , यहां यह इन अक्षरों का लिंग होता है, और इनका नहीं इस प्रकार विचार कर समस्त श्रुत के अक्षर पदोंको जानने वाली पदानुसारी बुध्दि है ।

अनुसा रीणी, प्रतिसारणी और उभयसारिणी के भेदसे तीन प्रकारकी पदानुसारिणी बुध्दि है ।

जो बुध्दि आदि, मध्य अथवा अंतमे गुरुके उपदेश से एक बीजपद को ग्रहण करके उपरिम (उससे आगे के) ग्रंथको ग्रहण करती है, वह अनुसारिणी बुध्दि कहलाती है ।

गुरु के उपदेश से आदि, मध्य अथवा अंतमे एक बीजपदको ग्रहण कर के वो बुध्दि अध: स्तन (पीछे वाले) ग्रंथको जानती है, वह प्रतिसारिणी बुध्दि है ।

जो बुध्दि नियम अथवा अनियम से एक बीज शब्द के (ग्रहण करने पर,) उपरिम और अध:स्तन (अर्थात् उस पद के आगे व पाछे के सर्व) ग्रंथ एक साथ जानती है वह उभय सामरिणी बुध्दि है ।

श्रोतेंद्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण और वीर्यातरायका उत्कृष्ट क्षयोपशम तथा अंगोपांग नाम कर्म का उदय होनेपर श्रोत्रेद्रिंय के उत्कृष्ट क्षेत्रसे बाहर दशों दिशाओं मे संख्यात योजन प्रमाण क्षेत्रमे स्थित मनुष्य एवं तिर्यचों के अक्षर

अनक्षरात्मक बहुत प्रकार के उठनेवाले शब्दोंको सुनकर जिससे (युगपत्) प्रत्युत्तर दिया जाता है, वह संभिन्न श्रोतृत्व नामक बुध्दि ऋध्दि कहलाती है ।

ऋध्दियां प्राप्त होना आश्चर्य नहीं है । आत्मा की शक्ति अनंत है, उस मे ये ऋध्दियां क: पदार्थ है । वैसे तो वीतराग भव्य जीव इन ऋध्दियों को लेकर क्या करेगा ? जो सराग जीव अभव्य है उन्हें आश्चर्य होता है कि, अहो यह कैसा चमत्कार है । यह मुझे कब प्राप्त होगा ? । किन्तु सराग जीव इन ऋध्दियों के अधिकारी पूर्णरुप से नहीं होते ।

ॐ -हिं स्वयंबुध्दाणं नम: ४ - १० - ६६

ॐ -हिं प्रत्येक बुध्द ऋध्दि सिध्देभ्यो नम: ४ - ११ - ६७

ॐ -हिं अर्हं बोध बुध्देभ्यो नम: ४ - १२ - ६८

हे भव्य, गुरु बिन ज्ञान कहां से होय ऐसा कहा जाता है, किन्तु यहां कैसी महिमा है देख। गुरु के उपदेश के बिना ही ज्ञान होता है । भगवान ऋषभनाथ के कथा मे आता है, कि उनके पूर्वके तृतीय भव मे तीन ज्ञानों को मतिश्रुतअवधि प्राप्त कर लिया था फिर क्या था ? वे तो स्वयंभू बन गये । ऐसा क्यों होता है ? ये तो निरंतर साधना का परिणाम है । द्रव्य दृष्टी से देखो तो बाहय कारण चैतन्य प्रभु अंतरात्मा को क्या कर सकते है ? कुछ नहीं ।

केव्रल ज्ञानादि अनन्त चतुष्टय सहित होने से आत्मा बुद्ध है । अपनी शक्तिरुप निमित्तसे होनेवाले ज्ञानके भेदसे प्रत्येक बुध्द होते है । कर्मके उपशमसे ज्ञान और तपमे अतिशयपना आता है । कर्मका उपशम क्यों होता है ? प्रधान कारण तो पुरुषार्थ है । पुरुषार्थके विना क्या कुछ सिद्ध हो सकता है ? अर्थात कुछ भी नहीं । भाग्य भी बनता है तो वह भी पुरुषार्थ से ही । कोई कहे कि, मैं पुरुषार्थ न करुं और भाग्य बना रहे तथा उज्ज्वल रहे तो असंभव है । क्योंकि कर्मका उदय. उसी कर्मका होता है जो किया हो अर्थात पूर्व भवमें या कर्मके उदयसे पूर्व कालमे ।

परोपदेशरुप निमित्तसे होनेवाले ज्ञानके भेद से बोधित बुध्द होते हैं । परोपदेशका मतलब गणधरादिक जो होते है, उनके उपदेशको श्रवण कर स्वयं जागृत होता वह । उपदेश करने का अधिकार तो उसको ही है,जो स्वयं ज्ञानी हो।

ॐ -हिं ऋतुमातिऋद्धि सिद्धेभ्यो नम: ४-१३-६९

ॐ -हिं विपुलमति ऋद्धि सिद्धेभ्यो नम: ४-१४-७०

ॐ -हिं दशपूर्वऋद्धि सिद्धेभ्यो नम : ४-१५-७१

ॐ -हिं चौदह पूर्व ऋद्धि सिद्धेभ्यो नम: ४-१६

ॐ -हिं अष्टांगनिमित्त ऋद्धि सिद्धेभ्यो नम:

ॐ -हिं विवर्णऋद्धि सिद्धेभ्यो नम: ४-१८-७४

ॐ -हिं विज्जाहरणऋद्धिसिद्धेभ्यो नम:

ॐ -हिं चारणऋद्धिसिद्धेभ्यो नम: ४-६०-८६

ॐ -हिं आकाशगामिनी ऋद्धि सिद्धेभ्यो नम:

ॐ -हिं परामर्श ऋध्दिसिद्धेभ्यो नम: ४-२२

ॐ -हिं आशीविषऋद्धिसिद्धेभ्यो नम: ४-२३

ॐ -हिं दृष्टिविषंविष ऋद्धिसिध्देभ्यो नम: ४-२४-८०

मन बडा चंचल है ऐसा सब समझते है, किन्तु सूक्ष्मरीती से समझो तो ज्ञानकी गति चंचल - अतिचंचल - इस से भी अधिक वेगवान होती है, क्यों कि मनको भी ज्ञान जानता हैं। मनकी बातको जान जाना मन: पर्यय ज्ञानका विषय है । विशेष इतना जानना कि यह जानना बिना पूछे होता है । कारण यह होता है कि मन: पर्यय ज्ञानावरण कर्मको क्षयोपशम होता है । उस के निमित्तसे परकीय मनोगत अर्थ को जाना जाता है । अहो, आगम मे जो

ज्ञानका विस्तार है वह अगम्य है। ज्ञान है सो सागर है, महासागर है फिर भी ऋजुमति ज्ञान के संबंध मे एक प्रश्न और उसका उत्तर देना है। प्रश्न है, मन वचन और काय मे ऋजुपना कैसे आता है? उत्तर हैं; जो अर्थ जिस प्रकार से स्थित है, उसका उसी प्रकार से चिंतवन करनेवाला मन, उसका उसी प्रकार ज्ञापन करनेवाला वचन और उसको उसी प्रकार से अभिनयद्वारा दिखलानेवाला कार्य तो ऋजु है।

विपुलमति का अर्थ विस्तीर्ण मति है । विपुल का अर्थ ऋजुमति से कुछ विशेष होता है । यथार्थ, अयथार्थ और उभय तीनो प्रकार के मन, तीनों प्रकार के वचन व तीनो प्रकार के कायको प्राप्त होने से विपुलता है । सरल या वक्र मन वचन काय के द्वारा किया गया कोई अर्थ; उसके चिंतवन युक्त किसी अन्य जीव के मनको जानने से निष्पन्न या अनिष्पन्न मति को विपुल है । ज्ञान तो महासागर है ही; उस महासागर का किनारा भी विस्तीर्ण और लंबा है। कलम और कागज किसप्रकार उसको नाप सकते है? इसलिए कलम को यहीं विश्राम देते है।

द्वादशांगरुप जिनागम तो आज हमारे पास नहीं है। शास्त्रोंमें यत्र तत्र जो नाम तथा लक्षण विषय आपिका वर्णन आता है, उस परसे ही संतोष करना पडता है। आचारांग से लेकर दृष्टिवादतक श्रुतज्ञान के बारह अंग है। उनमेसे बारहवा अंग दृष्टिवाद है। इस दृष्टिवाद के पांच अधिकार है । १) परिकर्म २) सूत्र ३) प्रथमानुयोग ४) पूर्वगत ५) चूलिका। चौथा अधिकार पूर्वगत है, उसके १४

भेद है । नाम निर्देश करने से क्या ? इनकी विशालता स्पष्ट होती है, इनके पदोंकी संख्या से जो ११२८३५८००५ है ।

धवलादि जो उपलब्ध है ; वह भी पढने मे हम असमर्थ है । फिर पूरे द्वादशांग को हम क्या पढें ? असमर्थ इसलिए कि एक तो इन से कुछ लौकिक प्रयोजन सिध्द नहीं होता । दूसरा जो भी स्कूलों महाविद्यालयों मे पाठयक्रम है, उसमे धवलादि नहीं । वैसे कारण अनेक हो सकते है ; केवल दो का ही यहां निर्देश है । कुछ भी हो हमे धवलादि ग्रंथों का अभ्यास अप्रमादी होकर करना चाहिए । जो भी संस्थाएं (इकाइयां आदि) ग्रंथों को छपवाते है ; उनको चाहिए नये नये ग्रंथों को छपवाएं ।

भव्यात्मन् हम पहले ही कहते आये है कि तपश्चरण करते हुए योगिजनों को कुछ चमत्कारिक शक्तियां प्राप्त होती है । क्या वे योगिजन इन ऋध्दियों को प्राप्त करने के लिए तपश्चरण करते है ? ये कैसा सोचना है ? वीतराग साधना मे कुछ लाभ हो, इस आशा से कुछ किया ही नहीं जाता । कोई जीव करता भी हो तो उसका जन्म व्यर्थ है । वीतराग साधना मे तो आत्मस्थ रहना आवश्यक होता है । प्राणियों की जो अंतश्चेतना है उस चेतना को उस मोड पर रखना सार्थ है जिससे शाश्वत परमानंद प्राप्त हो । सार तो यही है कि लाभ, आशा, आसक्ति आदि से परमानंद नहीं होता ।

अंतरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, व्यंजन, लक्षण, चिन्ह और स्वप्न इन आठ भेदोंसे विस्तीर्ण अष्टांगनिमित्त ऋद्धियां होती है । क्यों होती है ये ऋद्धियां यह पूछनेसे अच्छा तो होगा पूछना कि क्या होती है । ये ऋद्धियां ? क्यों ? क्यों कि क्यों होती है ये ऋद्धियां ऐसा

पूछना ज्ञान की अज्ञानता स्पष्ट करना है । ज्ञानकी महिमा अगम्य है ; जिस ज्ञान से परमोच्च सुख होता है उस ज्ञानसे ऋद्धियां प्राप्त होना बहुत छोटी प्राप्ती है और वह सहजही होती है ; उसमें आश्यर्च कुछ भी नहीं हैं ।

तीनों काल संबंधी लाभ अलाभका कारणभूत निमित्त शास्त्र अतीतादि के भेद से तीन प्रकारका है । चूंकि ऐसे शास्त्र के विना लाभालाभादिका ज्ञान संभव नही है, अत: उनके जाननेका निमित्त होनेंसे निमित्त शास्त्र कहा जाता है । यहां एक शंका है, जब जीव निमित्त ज्ञानी होता है तो क्या वह आर्त, रौद्र ध्यानमे ही उलझा रहता है ? । शंका का समाधान खोजनेंसे पहले, देखना होगा कि क्या उपयोगमे अस्थिरता है ? सम्यक्त्वी जीव यह तो जानता है कि परभाव मेरे नहीं है । उसको आर्त रौद्र ध्यान संभव नहीं । आत्म वैभव जो चाहता हो उसे आर्त रौद्र ध्यान नहीं होता । किसीने कहा है, भाव बढानें वाले के पास आत्म वैभव नही

होता और आत्मवैंभव जिसके पास हों उसके पास भव आना संभव नहीं ऐसा अनुभव है । अधिक कहनेसे क्या ऋद्धियों के लिए सम्यक्त्वी कुछ नहीं करता ।

विवर्ण ऋद्धिका विस्तारसे वर्णन हमे अभीतक कहीं मिला नहीं । पूजा मे तो इतनाही अर्थ है, अणिमादिक ऋद्धियाँ जिन्हे तपके प्रभावसे प्राप्त हुई है , तथा जो सिद्ध हुए हैं, वे निजपद मे निष्प्रयोजन लीन होते है । कितनी अच्छी बात कही ? निष्प्रयोजनलीनता । भाई, वीतराग धर्मकी यही ती महिमा है , प्रयोजनमे सकल्प विकल्प होता है । सिद्ध जीवों को संकल्प विकल्प का सर्वथां अभाव है ।

विज्जाहरण ऋद्धिका भी विस्तार हमें नहीं मिला। हमारा तर्क ऐसा है कि मोक्षोन्मुख योगि जहां करते हैं, जिस भूमिपर होते हैं या पानी मे से चलते है तो उनके शरीरसे कोई जीव जंतूको बाधा नहि होती । संभव है हमारा तर्क सुसंगत न हो ज्ञानी जीव हमे क्षमा करें ।

धवल मे कहा है, चरण , चरित्र, संजम, पापक्रिया विरोध इसका एकही अर्थ है । इसमे जो कुशल- निपुण है वे चारण कहलाते है । चारणऋध्दि के आठ प्रकार कहे गये है। शास्त्रोंमे तो आता है कि चारणऋध्दिके विविध भंगोंसे युक्त विभक्त किये हुए और भी भेद है परंतु उनके स्वरुप का कथन करनेंवाला उपदेश हमारे लिए नष्ट हो चुका हैं । फिरभी एक संयोगी द्विसंयोगी इस तरह २५५ भंगोंका वर्णन मिलताही है । सारांश यह कि योगि जो भी क्रिया करे उससे जीव जंतुओंकी विराधना नहीं होती ।

जिस ऋध्दि केद्वारा कायोत्सर्ग अथवा अन्य प्रकारसे ऊर्ध्वस्थित होकर या बैठकर जाता है वह आकाशगामिनीं नामक ऋध्दि है । आकाश गामिनी और आकाश चारण मे ऋध्दि प्राप्त जीवों का आकाशमें जाना तो होता ही है। अन्तर इतना ही है कि तप विशेष से उत्पन्न हुई आकाश स्थित जीवों के (वधको) परिहारकी कुशलतासे जो सहित है वह आकाश चारण है और आकाश मे गमन करने मात्र से आकाशगामी कहलाता है । सारांश आकाशगामी को जीववध परिहार की अपेक्षा नहीं होती ।

जिस जीवको परमत खंडन की कुशलता होती है उसको यह ऋध्दि होती हैं । या यूं कहिये, परामर्श ऋध्दि एक ऐसी ऋध्दि है जिससे स्याद्वाद नीतीसे परमत खंडन किया जाता है।

विष मिला हुआ भोजन जिनके मुखमें जाकर निर्विष होता है अथवा जिनके शब्द सुनकर विष व्याप्त जीव भीं निर्विष हो जाता है, ऐसी आशीविष ऋध्दि होती है ।

किसी जीवको रोग हो या विषबाधा हो और उसे द्दष्टि निर्विषऋध्दिधारी जीव देखे तो उसका रोग नष्ट होता है और विष दूर होता है ।

ॐ -हिं उग्रतपऋध्दिसिद्धेभ्यो नम: ४-२५-८१

ॐ -हिं दीप्त तप ऋद्धिसिद्धेभ्यो नम: । ४-२६-८२

ॐ -हिं तपोवृध्दि ऋद्धिसिद्धेभ्यो नम: ४-२७-८३

ॐ -हिं महातपोवृध्दिऋद्धिसिद्धेभ्यो नम: ४-२८-८४

ॐ -हिं घोरतपोऋध्दिसिध्दिभ्यो नम: ४-२९-८५

ॐ -हिं घोरगुणऋध्दिसिद्धेभ्यो नम: ४-३०-८६

ॐ -हिं घोरगुणपरिक्रमाणंऋद्धिसिद्धेभ्यो नम: ४-३१-८७

ॐ -हिं ब्रम्हचर्यऋद्धिसिध्देभ्यो नम : ४-३२-८८

ॐ -हिं आमर्षऋध्दिसिध्देभ्यो नम: ४-३३-८९

ॐ -हिं आमसियऔषधिऋद्धिसिद्धेभ्यो नम: ४-३४-९०

ॐ -हिं जलोसियऋद्धिसिद्धेभ्यो नम: ४-३५-९१

ॐ -हिं सर्वोसियऋद्धिसिद्धेभ्यो नम: ४-३६-९२

ॐ -हिं मनोबलीऋद्धिसिद्धेभ्यो नम: ४-३७-९३

ॐ -हिं वचनबलीऋद्धिसिद्धेभ्यो नम: ४-३८-९४

ॐ -हिं कायबलीऋद्धिसिद्धेभ्यो नम: ४-३९-९५

ॐ -हिं क्षीरस्त्रावीऋध्दिसिध्देभ्यो नम: ४-४०-९६

ॐ -हिं सर्पिस्त्रावीऋध्दिसिध्देभ्यो नम: ४-४१-९७

ॐ -हिं मधुस्त्रावीऋध्दिसिध्देभ्यो नम: ४-४२-९८

ॐ -हिं आमियरसऋध्दिसिध्देभ्यो नम: ४-४३-९९

ॐ -हिं अक्षीणरसऋध्दिसिध्देभ्यो नम: ४-४४-१००

भव्यात्मन् आत्मवैभवके साक्षी होनें के लिए तप तो करनाही पडता है । निष्प्रमादी होकर तप करना श्रेयस्कर होता है । जो एक उपवास को करके पारणा कर दो उपवास करता है, पश्चात् फिर पारणा कर तीन उपवास करता है, इस प्रकार एक एक अधिक वृद्धि के साथ साथ तीन गुप्तियों से रक्षित होकर, उपवास होता है । वीर्यातराय क्षयोपशमसे यह तप होता है ।

जिस ऋद्धि के प्रभाव से मन, वचन और कायसे बलिष्ठ ऋषिके बहूत प्रकारके उपवासों द्वारा सूर्य केसमान दीप्ती बढती है वह दीप्त तप ऋद्धि है ।

तपमे अंतराय उपस्थित होना कोई बडी बात नहीं है। अंतराय उपस्थित होने परभी जिनका तप शुक्लेन्दुवत् बढता है । उसके तपोवृद्धी ऋध्दि होती है । निरंतराय तप हो, यह विकल्प तपधारी योगी को नहीं होता ।

जिस ऋद्धि के प्रभावसे मुनि चार सम्यज्ञानोंसहित (मति, श्रुत. अवधि और मन:पर्यय) हो कर उनके बलसे मन्दिर पंक्ति प्रमुख सबही महान् उपवासोंको करता है वह ऋद्धि है ।

जिस ऋद्धिके बलसे ज्वर और शूलादिक रोगसे शरीरके अत्यंत पीडित होनेपरभी साधुजन दुर्ध्दर तपको सिद्ध करते है वह घोर तपऋध्दि है ।

तपसे निर्विकार रहना परमावश्यक होता है। महाभयंकर अंतराय निमित्त होने परभी जो तप करते ही रहते है, वह घोरगुण ऋद्धि है ।

यहां गुण और परिक्रम दो शब्द आये हैं । परिक्रम और पराक्रम एक है ऐसा हमारा तर्क है। फिरभी गुण और पराक्रममें भेद है । गुणसे उत्पन्न हुई शक्ति को पराक्रम संज्ञा है। कंटकशिला अग्नि कुछ भी हो उनको नष्ट करनेकी जिसमे हो वह घोरगुणपरिक्रम ऋद्धि है ।

अलोकिक गुणोंमें अलोकिक विचार करना चाहिए । लौकिक ब्रम्हचर्य तो सर्वसाधारण मानवको भी पालना चाहिए । यहां तो उनकी हमे चर्चा करनी है, जो निरंतर निरंजन आत्मवैभवसे झूलते है ।

जिस ऋध्दि से मुनिके क्षेत्र मे भी चौरादिक की बाधाए और काल एवं महायुद्धादि नहीं होते है वह अघोर ब्रम्हचारित्र है । कोई कहे कि, चारित्र पालनमे घोरत्व क्या, अघोरत क्या ? अरे भाई, ब्रम्हत्व चारित्र को कहते है । अघोर अर्थात् शांति है गुण जिसमे ऐसा चारित्र तथा द्दढ निश्चय से खुब तपना पडता है । इस अपेक्षा से घोर है ।

योगिजनोंको सत्संग करनेंसे, हस्तपादादिके स्पर्श मात्रसे आरोग्य लाभ हो , वह आमर्ष ऋध्दि है । तप के प्रभावसे जिनका स्पर्श समस्त औषधियों के स्वरुप को प्राप्त हो गया है, उनको आमोसिय ऋद्धि होती है । पसीनेंके आश्रित अंगरज जल्ल कहा जाता है, वह जल्लोषिधि ऋध्दि है । जिस ऋध्दिके बल से दुष्कर तप से युक्त मुनियोंका स्पर्श किया हुआ जल व वायु तथा उनके रोम और नखादिक व्याधिके हरनेंवाले हो जाते है, वह सर्वोषधि नामक ऋध्दि है । यहां शंका है कि, ऋद्धि प्राप्त हो ऐसा पुरुषार्थ योगिजन करते नहीं, फिर ऋध्दियां प्राप्त क्यों होती है ? अरे भाई, तपश्चरण करते हुए अंतरंग मे जो शुध्दि होती है, उसका ही प्रभाव बाहय मे स्वयमेव होता है, पुरुषार्थ की आवश्यकता नहीं होती ।

मन, वचन, काय के भेद से बल ऋध्दि तीन प्रकार है । इनमे से जिस ऋध्दिके द्वारा श्रुतज्ञानावरण और वीर्यांतराय इन दो प्रकृतियोंका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेपर मुहूर्त मात्र कालके भीतर संपूर्ण श्रुतका चिंतवन करता है व जानता है वह मनोबल ऋध्दि है । जिव्हेंद्रियावरण, तो इंद्रियावरण, क्षुतज्ञानावरण

और वीर्यातराय का उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेंपर जिस ऋध्दि केप्रगट होने से मुनि श्रमरहित और अहिनकंठ होता हुआ मुहूर्त मात्र काल के भीतर संपूर्ण श्रुत को जानता व उसका उच्चारण करता है, उसे वचन बल नामक ऋध्दि जानना चाहिए ; जिस ऋध्दि के बल से वीर्यातराय प्रकृति के उत्कृष्ट क्षयोपशमकी विशेषता होनेपर मुनि मास व चतुर्मासादिरुप कायोत्सर्ग करते हुए भी श्रमसे रहित होते है तथा शीघ्रता से तीनों लोकों को कनिष्ठ अंगुली के ऊपर उठाकर अन्यत्र स्थापित करने कि लिए समर्थ होते है वह कायबल नामक ऋध्दि है ।

जिस से हस्ततल पर रखे हुए रुखे आहारदिक तत्कालही दुग्ध परिणाम को प्राप्त हो जाते है वह क्षीरस्त्रावी ऋध्दि कही जाती है ।

जिस ऋध्दि से मुनियोंको वचनों के श्रवणमात्र से ही मनुष्य तीर्यचोंके दु:खादि शांत हो जाते है उसे क्षीरस्त्रावी ऋध्दि जानो ।

जिस ऋद्धि प्रभाव से मुनि के हाथ मे स्थित रुखे आहारादिक क्षणमात्र मे मधुर रससे युक्त हो जाते हैं वह मध्वास्त्रावी ऋद्धि है ।

जिस ऋद्धि केप्रभाव से मुनि के हाथ मे स्थित रुखे आहारादिक क्षणमात्रमें अमृततपनेके प्राप्त हो जाते है, वह अमृतास्त्रवी ऋध्दि है ।

जिस ऋध्दि से ऋषि के हस्ततल में निक्षिप्त रुखा आहारादिक भी क्षणमात्र घृतरुप को प्राप्त करता है वह सर्पिरास्त्रावी ऋध्दि है ।

जिस ऋध्दि के प्रभाव से मुनींद्र के दिव्यवचनों के सुननेसेही जीवों के दु:खादि शांत हो जाते है, वह सर्पिरास्त्रावी ऋध्दि है ।

अहाहा, धन्य है वे मुनिराज जिन्हें ऐसी ऋध्दियां अनायस ही प्राप्त हो जाती है । लोक मे कहा जाता है कर्म महा बलवान है ।

किन्तु ऐसे ऋध्दिधारी मुनिराज को देखकर हम जान जाते है कि कर्म बलवान नहीं है । कर्म का क्षयोपशम आदि बल देता है । इस बात पर बल इसलिए देना है कि जीव पुरुषार्थ परायण हो, न कि स्वयं को कर्माधींन समझकर कि कर्तव्य होकर बैठे यहां शास्त्रोंमें आई एक शंका तथा उसका समाधान उद्धृत करना उपयुक्त सिध्द होगा ।

प्र . - संसारी जीवों के निरंतर कर्मोका बंध होता है और इसी प्रकार कर्मो का उदय भी सदा होता रहता है, इस कारण उनके शुध्दात्मा के ध्यानका प्रसंगही नहीं, तब मोक्ष कैसे होती है ?

उ. - जैसे कोई बुध्दिमान अपने शत्रुकी निर्बल अवस्था देखकर अपने मन मे विचार करता है, कि यह मेरे मारने का अवसर हैं ऐसा विचार कर उद्यम करके

वह बुध्दिमान अपने शत्रुको मारता हैं । इसी प्रकार कभी सदा एकरुप अवस्था नहीं रहती। इस कारण स्थितिबंध और

अनुभाग बंध की न्यूनता होनेपर जब कर्म हलके होते है तब बुध्दिमान भव्य जीव आगम भाषा में पांच लब्धियों से और अध्यात्म भाषा मे निज शुध्द आत्मा के सन्मुख परिणाम नामक निर्मल भावना विशेष रुप खड्ग से पौरुष कर के कर्म शत्रु को नष्ट करता है । आत्मानुभव लेना यह मुख्य धारा हैं । इस मुख्य धारा के परिप्रेक्ष मे ऋध्दि स्वयमेव आकर

मिलनेपर भी सुख लोलुपता के निधन-समाप्ती पर ही संक्षिप्त होती है । सब से महत्वपूर्ण बात तो यह है कि, सुखलोलुपता होती ही नहीं ।

कोई कहे ऋध्दियों का उपयोग योगिजनों केलिए न हो सामान्य लोग तो लौकिक प्रयोजन केलिए कर सकते हैं ?

एक तो योगिजनों को कष्ट देना सामान्य लोगों का कर्तव्य नहीं और दूसरा यह कि, स्वार्थ के वशीभूत होकर या डर के मारे किसीका सहारा ढूंढना सम्यक्त्व में बाधक सिद्ध होता है ।

आइये, श्रेष्ठ ऋध्दिधारी आत्मध्यान में लीन योगिजनों कों भावसहित नमस्कार करें ।

ऊँ -हिं वड्ढमाण सिद्धेभ्यो नम:	४-४५-१०१
ऊँ -हिं अरहंत सिध्देभ्यो नम:	४-४६-१०२
ऊँ -हिं णमो लोएसव्वसिद्धेभ्यो नम :	४-४७-१०३
ऊँ -हिं भगवदो महावीरवड्ढमाणाय नम:	४-४८-१०४
ऊँ -हिं णमो योगसिध्दाय नम:	४-४९-१०५
ऊँ -हिं णमो ध्येयसिध्दाणं नम:	४-५०-१०६
ऊँ -हिं णमो सव्वासिद्धाणं नम:	४-५१-१०७
ऊँ -हिं णमो स्वस्तिसिद्धाणं नम:	४-५२-१०८
ऊँ -हिं अर्हसिध्दाणं नम:	४-५३-१०९
ऊँ -हिं अर्हसिद्धसिद्धाणं नम:	४-५४-११०
ऊँ -हिं परमात्मसिद्धाणं नम:	४-५५-१११
ऊँ -हिं परमसिद्धाणं नम:	४-५६-११२
ऊँ -हिं परमागमसिद्धाणं नम:	४-५७-११३
ऊँ -हिं प्रकाशमानसिद्धाणं नम:	४-५८-११४
ऊँ -हिं णमोस्वयंसिद्धाय नम:	४-५९-११५
ऊँ -हिं णमोब्रम्हसिद्धाय नम:	४-६०-११६

ॐ -हिं णमोअनंतगुणसिद्धाय नम: ४-६१-११७

ॐ -हिं णमोपरमानंतसिद्धाय नम: ४-६२-११८

ॐ -हिं लोकवाससिद्धाय नम: ४-६३-११९

ॐ -हिं णमोअनदिसिद्धाय नम: ४-६४-१२०

क्या है वर्धमान ? शास्त्रों मे आता है, अव समताद्दद्ध वृद्धं मानं प्रमाणं ज्ञानं यस्य स भवति वर्धमान: । इसका अर्थ है अव अर्थात् समंतात्, ऋद्धं अर्थात् वृध्द, मान अर्थात् प्रमाण या ज्ञान । अर्थात् हर प्रकारसे वृद्ध ज्ञान जिसके होता है, वह वर्ध्दमान है । कैसी महिमा है ? हर प्रकारसे वृध्द ज्ञान जिसके होता है, वह वर्ध्दमान । ज्ञान ही क्यों ? चारित्र क्यों नहीं ? ज्ञान में ही सर्व गुण समा जाते है । ऐसा कहने मात्र से अनंत धर्मो मे से मात्र ज्ञान गुण बतलाना है दर्शन चारित्र आदि नहीं ऐसा नहीं समझना । पूर्ण आत्मा बतलाना है । इसलिए ज्ञान की इतनी महिमा है । ऐसा ज्ञान सदैव वर्ध्दमान होता है ।

ये जो सिध्दों मे भेद है , बाहय निमित्तों की अपेक्षा से है । वास्तव मे केवल ज्ञान भावमोक्ष है और भावमोक्ष के बलसे द्रव्य मोक्ष होता है । अवगाहना गुण के अतिरिक्त अन्य आत्मीय गुणों कीं अपेक्षा से उनमे कोई भेद नहीं । शत्रु कौन है ? कहने को तो बहुत है। धवल ग्रंथ में बडी अच्छी बात आई है । वहां बताया गया है .... अशेषदु:ख प्राप्तिनिमित्तत्त्वादरिर्मोह: । मोह शत्रु ह । शिष्य शंका करता है कि, अहो गुरुदेव, केवल मोह को हि अरि मान लेने पर शेष कर्मो का व्यापार निष्फल हो जाता है । गुरुदेव कहते है , ऐसा नहीं है क्यों कि बाकीं के समस्त कर्म मोह के ही आधीन है । मोह के बिना शेष कर्म अपने अपने कार्य की उत्पत्ति में व्यापार करते हुए नहीं पाये जाते है जिससे कि वे भी अपने कार्यं मे स्वतंत्र समझे जाये। इस लिए सच्चा शत्रु मोह ही है, और शेष कर्म उसके आधीन है । इस शत्रु को जिन्होंने नाश किया है वे अरहन्त है । नाश करना क्या है ? आत्म गुणों का पूर्णतया आविर्भाव होना सिद्ध होने मे कारण है । अत: नाश करना कोई अलग क्रिया, नहीं । मोहादिक दूर हटाना और आत्म गुणोंका आविर्भाव होना एक ही समय होता है ।

भक्त भाव विश्व में डूबता हुआ कहता है, मै लोक मे जितनें भी सिद्ध भगवान है, उन्हे नमस्कार करता हुं । जितनें भी क्यों कहा ? एक से काम नहीं चलेगा ? हां चलेगा । गुण तो समान है । हमे आत्मशुद्धि से मतलब है । आत्मशुध्दि एक से हो तो एक ही सिद्ध भगवान से प्रयोजन है । बात थोडी अजीब लगतीं है न ! क्या करे भक्त का ह्दय है । लोक में जितने भी सिद्ध भगवान हैं ; उन्हे नमस्कार करना चाहता है । लोए और सव्व ऐसे दो शब्द है ।

एक भक्त नें लोए शब्द उठाकर सव्व के बाद रख दिया । क्या हुआ रखानें से । अर्थ में परिवर्तन आया । सिद्ध लोक तो एक ही है; अेक से जादा लोक, जहां सिध्द भगवान रहते है ; नही है । फिर भी भक्त कहता है कि सव्व लोए । क्यों ? वह तो तर्क चलाता है कि, एक तो सिध्द लोक है, दूसरा मेरा भावविश्ध्व है, उसमें सिध्द भगवान विराजमान है , उनको नमस्कार है । लोए सव्व का सव्व लोए कहकर उसने नवाकृती को सामने रखा । किन्तु भाव जो एक ही है और वह है समर्पण का !

चलो, आगे बढें । अब हमारे सामने तीन शब्द है । एक भगवदो, दूसरा महावीर और तीसरा बड्ढमाण । जो किसी से भग मे नहीं आवे वह भगवान जिसको कोई क्षति नहीं पहुंचा सकता वह है भगवान, महावीर कब हुए ? वर्धमान चरितम् नामका एक ग्रंथ है । उसमे अभयात्मतया शब्द आता है । बालक वर्धमान को भयभीत करने के लिए संगम नामका देव आया जिसने अति भयंकर सर्पका रुप धारण किया उस नागराज के मस्तक पर अभयात्मतया निर्भय होकर दोनों पैर रखे । नागराजने असली रुप प्रकट किया और महावीर यह नाम रखा । इस कथा को रुपक समझकर हम यूं कह सकते है । संगम का अर्थ है, मिलना सर्पका अर्थ है जो घसीटकर आगे आगे चलता है, भाव ऐसा कि , कर्मोदयवशात किसी भी कठिनायोंका मिलना हो, तथा उनका धीरे धीरे बढना हो ; जो वर्धमान है ; बढनेवाला है ; उसे डरना नहीं चाहिए । वर्धमान तो उसे कहते है जो कभी कम न हो ; हमेशा बढे ।

योग क्या है ? युज्यत इति योग: ऐसा धवल ग्रंथमे कहा हैं । अर्थात् जो संबंध को प्राप्त हो उसको योग कहते है । समाधि के अर्थ में निरवद्यस्य क्रियाविशेषस्यानुष्ठानं योग: ऐसा भी कहा है । योग के विषय मे बहुत कुछ कह सकते है , किन्तु यहां वह प्रयोजन नहीं हैं । योग धारण कर जो सिध्द हुए है उन्हे योग सिध्द कहा जाता है । योग वीर्य गुणकी पर्याय है । सिध्द तो अनंत वीर्य धारी होते हैं , उनके परमोत्कृष्ट योग होता है । भगवती आराधनामे कहा हैं ; उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या के द्वारा सूक्ष्म काययोग से ज्ञाता वेदनीय कर्मका बंध करनेवाले वे भगवान सूक्ष्म क्रिय नामक तीसरे शुक्ल ध्यानक आश्रय करते है । बात धर्म ध्यान से भी अलग निकल गयी शुक्ल ध्यान से आत्मा के प्रदेश निश्चल होते है ; और तब कर्म बंध नहीं होता । क्षपण सार मे कहा है तब सर्व कर्मो से विमुक्त होकर आत्मा एक समय मे सिध्द को प्राप्त होता है । योग का सामर्थ्य है । जादा कहने से क्या ? समझ लेना ।

अब ध्येय सिध्द परमात्माको नमस्कार किया है । निज शुध्दात्मा या शुध्द पारिणामिक भाव ध्येय है । शक्ति और व्यक्ति की विवक्षासे तीन काल के गोचर साक्षात् द्रव्यार्थिक नयसे एक परमात्माका ध्यान व अभ्यास करनेका उपदेश है । द्रव्य संग्रह मे कहा है, ... रागादि विकल्पोसे रहित मोक्षका कारणभूत ध्यान भावना पर्याय मे वही मोक्ष ध्येय होता है । यहां निजशुध्दात्मा, पारिणामिक भाव, भावना पर्याय आदि शब्द दुरुह हैं । विस्तार रुचि जीव शास्त्रों को पढकर इनका स्वरुप जान ले । सुगमता के लिए हम यहां इतना कहेंगे ज्ञानस्वरुप यह आत्माही ध्येयतम है ।

सब सिध्दोंको नमस्कार किया है । पूर्वमें हम लोए सव्व सिध्द कहा है । यहां केवल सव्व सिध्द कहा है । चिंतन बडा कार्यकारी होता है । इसलिए चिंतनकी परिधियां बढा लेना अपना कर्तव्य है । एक मनचलेने कहा, प्रतिक्षण कर्मोदय तो होता ही है, तथा बुध्दि कर्मानुसारिर्णी ऐसा भी कहा है ; फिर आप जो कहते है कि सिध्द भगवान का ध्यान करो तो उस चिंतन के लिए हम कहां स्वतंत्र है । कर्मोदयमे चिंतन आयेगा तो करेंगे ? बडा अच्छा प्रश्न है । प्रश्न न पूछो तो उत्तर कहांसे ।और उत्तर न हो तो ज्ञानकी पूर्णता कहां ? शंकाकारने इतना तो मान लिया कि कर्मोदय होता है । कर्मोदय किससे होता है ? जिसने कर्म बांध लिया है , उसके कर्मोदय है । कैसे बांधं लिया जाता है ? जैसा आश्रव हो , वैसा कर्म बध्द होता है । काव्य वाङमन: कर्मं योग: । स आश्रव: । मोक्षशास्त्र मे सूत्र है । और जो कर्म योग है वह किसके हात है ? लो बात अपने परही आ गई । तो मानना होगा कि हम पुरुषार्थ कर सकते है । पुरुषार्थ करने में हम स्वतंत्र है । ऐसा नही होगा तो मोक्षका भी अभाव हो जायेगा ।

महान् पुण्यादयकी बात है कि, आज हम सिध्द भगवानका ध्यान कर रहे है । कहां है स्वस्ति सिध्दाणं नम: । स्वस्ति का अर्थ है , उत्कर्ष , कल्याण , कुशल, पुण्य आशिर्वाद, मंगल । इन छोटे शब्दमे कितना भाव भरा है । ३०० पेज की छोटी किताब मेरे सामने है । उसमे जो लिखा है उसका अमल करो तो, तीन अरब मनुष्य निर्भय हो सकते है । आज तो युध्द- महायुध्द - कब होगा कह सकते, जिसमे तीन अरब मनुष्य भयभीत है । आचरणकी बात कठिन है । सुनना अच्छा लगता है । क्या करें ? हम तो कहते है, चारित्र मोहनीयका उदय है । चलो छुट्टी हो गयी । भव्यात्मक ऐसा नहीं है । पुरुषार्थ के सन्मुख होकर चल !

अहो, पत्रके प्रारंभमे ही हम कह डालते है कि, यहां स्वस्तिक्षेम है । भाव यह है कि, यहां सब कुशल मंगल है । सिध्द भगवान ता स्वयं स्वस्तिरुप हैं । सिध्द भगवान जगतका कल्याण करनेवाले हैं । इसका अर्थ यह तो नहीं है कि,

जहां कल्याण हो वहां आपको खींचकर ले जाय ! पुरुषार्थ तो जिसका उसको ही करना पडता है । दैवसे विपरीत- जिसमे बहुत प्रयत्न केद्वारा कर्म साता वेदनीय आदि रुप परिणत होता है - उसे पुरुषाकार या पुरुषार्थ जानना चाहिए । अथवा फलकी सिध्दमे जहां पुरुष प्रयत्नकी अपेक्षा दैवकी सहायता अल्प रहती है उसका नाम पुरुषार्थ है । मुक्त जीवके भी पुरुषार्थ होता है । स्याद्वाद मंजरीमे कहां है, वीर्यलब्धिरुप प्रयत्न मुक्त जीवके होता है । कुरल काव्यमे तो यहांतक कहा है कि, जो भाग्य के चक्र के भरोसे न रहकर लगातार पुरुषार्थ किये जाता है, वह विपरीत भाग्य के रहनेपर भी उपसर विजय प्राप्त करता हैं । चलो, इतना स्पष्ट कहना पर्याप्त है ।

अतिशय पूजार्हत्वाद्वार्हन्त: ऐसा धवल मे कहा है । धातु कोशमे अर्ह शब्दका अर्थ है; पात्र, समर्थ ; पूजने योग्य, विख्यात आदि जा गुणमे सर्वाधिक होता है वही समर्थ होता है पात्र होता है । शब्द अर्थ लेकर आता है । समर्थ शब्द सम्- अर्थ इन दो शब्दोंके संधि होनेपर होता है , सम्का अर्थ है यथोचित, अर्थ का अर्थ है उद्देश जिन्होंने प्राप्त किया है वह है समर्थ । जीवका यथायोग्य उद्देश क्या है ? मोक्षप्राप्तीसे बढकर क्या उद्देश है ? अत: सिध्द हुवा ,जिन्होंने मोक्ष प्राप्त किया वे है समर्थ अेकही शब्दके अनेक अर्थ होते है । फिरभी अधिक प्रचार किसी एक का ही होता है । अर्ह शब्द उसीका उदाहरण है । चार अर्थ होनेपर भी पूजने योग्य यही अर्थ स्वीकार्य है ।

सिध्दों के गुणोंका सम्यक्त्वी जीव चिंतन करता है । सम्यक्त्वी जीव निर्मल होता है । उस निर्मल ह्दय से जडका भी चिंतन चल रहा हो तो भी उससे भेद विज्ञान छलक उठता है । यहा तो सम्यक्त्वी जीव परमशुध्द परमात्मा का चिंतन करता है । उस चिंतन से वह अपने स्वरुपका अन्वेषण करता है । उस उन्वेषण मे उसे सर्वोत्तम स्वरुप की प्रतीति होती हैं । सिध्द परमात्मा कैसे हुए इसकी यहां बात चल रही है । शध्द जीवका जो परम धर्म है उसको सिध्द करके जीव परमात्मा होता है । कैसी अपूर्व बात है ! एक बार परम धर्म मिला तो वह छूटता नहीं । अहो, सिध्द परमात्मा है । ज्ञानार्णवमे कहा है निर्विकल्पश्च शुध्दात्मा परमात्मेति वर्णित: जो निर्विकल्प होता है और शुध्दात्मा होता है उसे परमात्मा कहा है ।

परम उसे कहते हैं जो श्रेष्ठ है । और सिध्द परमात्माको नमस्कार किया है । धन्य है वह जीव जिसने मनवचन काय से नमस्कार किया है अब यहां परमागम का चिंतन चल रहा है । कैसे है परमागम ? अतिशं्यज्ञानानाम् आकार: है हम नहीं तत्वार्थ वार्तिकार कहते है । हम तो अल्पज्ञानी है । हमे ज्ञानावरण कर्मका

उतना क्षयोपशम कहां जो ऐसी महत्वपूर्ण बात कह सके ? आकर खानि को कहते है । समूह को कहते है । तो अर्थ हुआ, अतिशय ज्ञानकी खान परमागम है । परीक्षामुख ग्रंथमे कहा है, आप्तके वचनादिसे होनेवाले पदार्थो के ज्ञानको आगम कहते है । धवलमे कहा है, आगम तर्क का विषय नहीं है । परमागम प्रणाम है । क्यों ? अनगार धर्मामृतमे कहा है, कौन पुरुष होगा जो कि रागद्वेषके विना वितथ मिथ्या वचन बोले ? अर्थात् रागद्वषके विना जो कहा जाता है वह सत्य है । स्याद्वादमंजिरीमे कहा है ; सर्वज्ञ आप्तद्वारा बनाया आगमन ही प्रणाम है । जिन्होंने ऐसा परमागमको हमारे उपकार हेतु कहा है उन सिध्दों को नमस्कार शास्त्रोंमे परमागम को रत्नानाम् उदधि कहा है ।

यहां प्रकाशमान सिध्दोंको नमस्कार किया है । सिध्दोंको किसका प्रकाश है ? चैतन्यका प्रकाश होता है । उस चैतन्यमे अनंत गुण समा जाते है । उन अनंत गुणोका जिन्हे वैभव प्राप्त है ऐसे सिध्द भगवान है ।

सिध्द भगवान ज्ञान से प्रकाशमान है ज्ञानमात्र भी कहनेसे अनंतगुण आ जाते है । कैसे ? ज्ञान मात्र है ऐसा कहनेसे अस्तित्व धर्म आ गया । ज्ञानके अतिरिक्त देहादि पररुप से आत्मा नहीं है ऐसा नास्तित्व धर्म आ गया । ज्ञान नित्य स्थायी है इसलिए नित्यपना भी आ गया ... . इस प्रकार अनंत धर्मोका पिंड लक्षमे आता है जो प्रकाशमान है ; उन सिध्दों को नमस्कार

सिध्द भगवान को किसने सिध्द किया ? वे स्वयं सिध्द हुए । इसप्रकार निमित्त को उडा दिया और वस्तुकी स्वतंत्रता प्रस्थापित की । निमित्त कुछ कर नहीं सकता । वह तो उदासीन उपस्थित रहता है । जब आठों कर्म नष्ट हुए तो कौन उपस्थित था ? अर्थात् कोई नही । आठो कर्म नष्ट होनेपर मुक्त होना स्वभाव है ; उसके लिये किसी निमित्तकी आवश्यकता होती ही नहीं

इंद्रिय और मनसे जो सर्वथा पृथक् आत्मा है उसे ब्रम्ह कहते है । ऐसे ब्रम्हरुप सिध्द है उन्हे यहां नमस्कार किया है । ब्रम्ह का अर्थ परमेश्वर इस अर्थ को लेकर नादब्रम्ह, कहते है । नादही जिससे ब्रम्ह हैं शब्द ही ब्रम्ह है , ऐसा अर्थ लिया जाता है। यहां उसका कोई संबंध नहीं । सिध्दोंका आत्मा परिपूर्ण शुध्द है । टंकोत्कीर्ण है । सर्वथा पृथक् परभावों से होनेसे अनंत गुणोंका स्वयंमे समावेश है । जिनकी ज्ञानपिपासा जाग उठी है, वह यहां शंका प्रस्तुत करता है कि, अहो, जब अनंत गुणोंका स्वयं में समावेश है वह आत्मा परको कैसे जानता है ? आचार्य समाधान करते है, आत्मा ज्ञायक है, आत्मज्ञान स्वभाव है । स्वभाव को कोई अलग नहीं कर सकता । इसलिये परको जानने मे कोई विरोध नहीं है ।

अनंत धर्म या गुणों के समुदायरुप वस्तुका स्वरुप प्रमाणद्वारा, जाना जाता है ; ऐसा सिध्दांत है । कार्तिकेयानुप्रेक्षामे कहा है , तीनों ही कलों मे सर्व द्रव्य अनंतानंत है ; अनंतानंत पर्यायात्मक होते है ; अनंतानंत सत् असत्, नित्य अनित्यादि अनेक धर्मो से विशिष्ट होते है । उसमे भी विशेषता इतनी है कि द्रव्यकी अेक शक्ति दूसरी शक्ति नहीं हो सकती अर्थात् सब अपनें अपनें स्वरुपसे भिन्न भिन्न हैं । जीवद्रव्यमे भी अनंत गुण है । पंच्याध्यायी मे कहा है एकही जीव अनंत धर्मयुक्त कहा जाता है; क्योंकि जितना भी पदार्थका समूदाय है वह सब अनंतानंत गुणात्मक होता है । गुणोंका तीनों कालों मे समय समयवर्ती परिणमन होना यह पर्याय है ; जो कि अनंत है । आत्मा भी वस्तु है इसलिए उसमे भी अपने अनंत धर्म है । विशेष गुण सहित वे प्रदेशही द्रव्य नाम से कहे गये है और जितनें भी विशेष है वे सब गुण कहे जाते है ।

सिध्द भगवान परम अर्थात् श्रेष्ठ है । अत: श्रेष्ठ गुण भी अनंत है । ऐसे श्रेष्ठ अनंत गुणोंको यहां नमस्कार है । सिध्दोंके गुण गाते गाते अपने आत्मा मे भी श्रेष्ठ गुण प्रगट हो ऐसा यहां भाव है । सिध्द भगवान आदर्श है । आदर्श गुणोंका स्वीकार करना भक्तका कर्तव्य है ।

सकल कर्म नष्ट होनेपर उध्द्र्वगमन करना आत्माका स्वभाव है । उस स्वभाव का स्मरण करके सिध्द जीवों को नमस्कार किया है । जिसका आदि न हो उसे अनादि कहते हैं । कहां तक कहें ! सिध्द भगवान की महिमा अपरंपार है । सिध्दों के गुण जो प्रकट हुए है वे गुण नये नहीं है । भविष्य में भी वे गुण विच्छेद को प्राप्त नहीं होते । श्रेष्ठ और अनंत गुणों के धारक सिद्ध भगवान को नमस्कार हो ।

ॐ -हिं सम्यग्दर्शनाय नम: ५-१-१२१

ॐ -हिं सम्यग्ज्ञानाय नम: ५-२-१२२

ॐ -हिं सम्यक्चारित्राय नम: ५-३-१२३

ॐ -हिं अस्तित्वधर्माय नम: ५-४-१२४

ॐ -हिं वस्तुत्वधर्माय नम: ५-५-१२५

ॐ -हिं अप्रमेयधर्माय नम: ५-६-१२६

ॐ -हिं अगुरुलघुधर्माय नम: ५-७-१२७

ॐ -हिं चेतनत्वधर्माय नम: ५-८-१२८

ॐ -हिं अमूर्तिन्वधर्माय नम: ५-९-१२९

ॐ -हिं ज्ञानधर्माय नम: ५-९-१३१

प्रभात सूनहरा समय है, जो प्रभाव को सुप्रभात कहने को उत्तेजित करता है । हां, सम्यक्‌दर्शन आत्मविकास के क्षितिज पर प्रभात ही है । जब सम्यक् दर्शन की चर्चा चलती है तो आत्मधर्म की अच्छी अच्छी बातें सामने आती हैं । सम्यग्दर्शन तो तब होता है जब जीव को आत्मा की मान्यता दृढ होती है । प्रश्न तो वह है कि वह जीव आत्मा को मानता कैसा है । परमार्थत: वह जीव निजात्मा को त्रिकाल शुध्द व ध्रुव मानता है ।

इस पर प्रश्न यह है कि सम्यक्त्वी जीव की अवस्था विकारी होती है ; उसका क्या हुआ ?

विकारी अवस्था सम्यक् ज्ञान का विषय है । जींव (सम्यग्दर्शनधारीं) जो आश्रय लेता है वह अवस्था पर नही । अवस्था का आश्रय राग निर्माण करता है ध्रुव स्वरुप का आश्रय शुध्द प्रकट करता है । क्या होता है सम्यग्दर्शनमे ?

सम्यग्दर्शन मे तो शुध्दात्माका प्रतिभास होता है । तब अखंड ज्ञायक स्वभाव की प्रतीति होती है ।

सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग है न ? मोक्ष मिलने के बाद मार्ग कहां यह कोई दोष नहीं है । पहले शाखा है, बाद मे वृक्ष हुआ, तो क्य शाखा नष्ट हुई ? शाखा है ही । सारी बात तो यह है कि अकेला स. दर्शन मोक्ष मार्ग नहीं है ।

तत्वार्थका श्रध्दान और आत्माका श्रध्दान एक ही कैसा ? अर्थका अर्थ है द्रव्य, गुण और पर्याय । तत्त्वका अर्थ है उसका भाव स्वरुप । जीव चैतन्य, स्वरुप है और वह सब वस्तुओंको जानता है । सब वस्तु ज्ञेय हैं । परिणामत: तत्वार्थ श्रध्दानकी और आत्माके श्रध्दानकी भूमिका (जानना) एकही है । इसलिए तत्वार्थश्रध्दान तथा आत्मश्रध्दान एक ही है ।

सिध्द भगवान के चिंतनमे यह बात कहांसे आयी ? सम्यग्दर्शन उनके अनंत गुणोंमे से है । उसका चिंतन सिध्दोंका चिंतन है । यह बात भी सही है कि, हम जो कर रहे है वह निश्चित है और व्यवहार नयसे है । निश्चय नय तो स्वाश्रित है । हम छद्‌मस्थ है । चिंतन अखंड नहीं हो सकता । क्रमसे होता है यहां निराबाध शब्द आया है ।

बाधा कैसे आती है ? विकल्प से बाधा आती है । दूसरा तो कोई पदार्थ है ही नही जो साम्यग्दर्शन मे बाधा डाले मै ज्ञान स्वरुप आत्मा हूं ऐसा विकल्प करना भी विकल्प है । विकल्प को रखकर स्वरुपानुभव नहीं होता । सिध्दों को तो स्वरुपानुभव निरंतर है । अखंड स्वभाव का लक्ष्य ही स्वरुपकी शुध्दि केलिए कार्यकारी है विकल्प रहित होकर अभेद का अनुभव करना ही सम्यग्दर्शन है

सम्यग्ज्ञानका स्वरुप कैसा है ?

ज्ञान का स्वभाव सामान्य विशेष सब को जानना है । जब ज्ञान ने संपूर्ण द्रव्य को, विकसित पर्याय को और विकार को ज्यों का त्यों जानकर यह विवेक किया कि, जो परिपूर्ण स्वभाव है सो मै हूं और जो विकार रह गया है सो मै नहीं हूं । तब वह सम्यक् कहलाया ।

ध्यान रखो स. दर्शनरुप विकसित पर्याय को स.दर्शन की विषयभूत परिपूर्ण वस्तु को और अवस्था की कमी को .... (तीनों को) सम्यक् ज्ञान यथावत् जानता है। साररुप बात तो यह है कि, ज्ञान निश्चय व्यवहार का विवेक करता है तब सम्यक् होता है।

यहां इस सिद्ध पूजा मे निरंश शब्द आया है । सम्यक् ज्ञान सामान्य व्यवहार मे ऐसी बात है कि, ज्ञान कि तो बडी बातें होती है किन्तु जब पालन करने कि बात आती है तो असमर्थ होने की बात कही जाती है । जो श्रद्धा मे आया , ज्ञान से जाना उसको चारित्र में लाना श्रेयो मार्ग है । यहां तो सिद्ध भगवान को तो शुद्धात्मा अनुभूत होता है। वही चारित्र हैं , वहीं सम्यक् है । दूसरे शब्दों मे हम कह सकते है कि, जिसकी श्रद्धा सम्यक् हुई ; ज्ञान सम्यक् हुआ उसे ही सम्यक् चारित्र होता है । ज्ञान गुण को सम्यक् होने पर आत्मगुण की जो उपलब्धी होती है , वही सम्यक् चारित्र है । जब दर्शन ज्ञान सम्यक् होते है, तब तो आत्मा का शुद्धोपयोग ही चलता हैं न ? और जो शुद्धो पयोग हैं वही सम्यक् चारित्र है । यूं भी कह सकते है कि सम्यदृष्टि को जो कुछ भी चारित्र प्रकट हुआ हो सो सम्यक् है ।

अस्ति अर्थात् है पने के भाव को अस्तित्व कहते है। व्याकरण से देखो तो अस् धातु का अर्थ अस्तित्व है । उसका जो सत्तारुप होना अस्तित्व है । यह पारिणामिक होता है । कर्मका उदय, क्षय, क्षयोपशय या उपशय अस्तित्व के लिए कारण नही है। वस्तु मे उत्पाद, व्यय तो चलता ही रहता है , जिसमें एक पर्यायका विनाश होता है, अन्य पर्यायकी उत्पत्ति होती है तथा उसी समय उन्वयी गुणोंसे द्वारा जो ध्रुव है ऐसा एक वस्तुका उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरुप लक्षण ही अस्तित्व है । अस्तित्व दो प्रकारका है ।

स्वरुपास्तित्व या अवांतर सत्ता.

सादृश्य अस्तित्व या महासत्ता

सर्वकाल मे गुण तथा अनेक प्रकार की अपनी पर्यायोंसे और उत्पादण्यय ध्रौव्यसे द्रव्यका जो अस्तित्व है वह स्वभाव है ।

सत् द्रव्य है, सत् गुण है और सत् पर्याय है । तथा सत् ही उत्पाद है, व्यय है, ध्रौव्य है उस प्रकार के विस्तार का नाम अवांतर सत्ता है ।

सर्व पदार्थ समूह मे व्याप्त होनेवाली सामेंश्य अस्तित्व को सूचित करने वाली महासत्ता है । समस्त वस्तु विस्तारमें व्यापनेवाली तथा समस्त व्यापक गुणोंमे तथा अनंत पर्यायोंमे व्यापनेवाली महासत्ता है । ... . समझाने मे कठिन है न ! किंन्तु क्या करे, वस्तुस्वरुप जैसा है वैसा कहना भी तो होता है । एकबार समझे तो कठिन नही लगता.

वस्तु के भाव को वस्तु कहते हैं । अपने स्वरुप के ग्रहण और उसके स्वरुप के त्याग से ही वस्तुके वस्तुत्व का व्यवस्थापन किया जात है । परिणामी वस्तुलक्षणम् । परिणमन करते रहना वस्तु का लक्षण है प्रमेय का कोश मे अर्थ है अनुमान, जो सिध्द करना है वह बात द्रव्यपर्यायरुप वस्तुही प्रमेय है ऐसा शास्त्रोंमे लिखा है । यो ऽ र्थ: प्रमीयते तत्प्रमेय ऐसी प्रमेय की व्याख्या है । भाव ऐसा कि जो वस्तु जांची जावे उसे प्रमेय कहते हैं। यह तो हो गया प्रमेय अप्रमेय क्या है ? जो प्रमेय नहीं वह अप्रमेय है ।

यहां पूजा मे कहा है, परमाण न जानत है तिनको ऐसा कहा है । ज्ञान प्रमाण होते हुए भी सिध्द भगवानको नही जान सकता क्योंकी सिध्द भगवान अनंत गुणों के धारक है ।

कैसा है अगुरुलघुत्व गुण ? जीवादिक द्रव्योंकी स्व प्रतिष्ठा का कारण होता है । स्वरुप है । स्वरुप प्रतिष्ठित्व निबन्धनस्य ऐसा शास्त्रोंमे आता है । स्पष्ट है कि, द्रव्योंका जो स्वरुपमे तिष्ठना होता है , वह अगुरुलघुत्व के कारण ही है ।

अब चेतना धर्मकी बात आयी । धर्म नाम स्वभावका है । धर्मके अनेक अर्थ है ; उसमे विशिष्ट गुण यह भी एक अर्थ है । चेतना तो विशिष्टता रखती ही है, यहां सिध्द भगवान के गुणोंकी चर्चा चल रही है तो ऐसी व्याख्या होगी, स्वसवेदनगम्य अंतरंग प्रकाशस्वरुप भाव विशेषकी चेतना कहते है; तथा निजी शुध्द भाव का नाम ही धर्म है : यूं ही विचार करना है। कैसी होती है चेतना ? चेतना तो प्रतिभास्वरुप होती है । जिस शक्ति के सान्निध्य से आत्मा ज्ञाता दृष्टा कर्ता भोक्ता होता है वह चेतना हैं । चेतना स्वसंवेदनगम्य हैं, यह भाव ऊपर आया ही है : उसमे कुछ विशेष इतनाही यहां कहना है कि, ज्ञानानुभूतिस्वरुप शुध्द चेतना होती है इतना और विशेष जानना कि , ज्ञान चेतना शुध्द कहलाती है । अशुध्द चेतना आत्मा और कर्म के संयोग से उत्पन्न होने वाली है ।

सिध्द भगवान निराकार होता है । इसलिए उनकी कोई मूर्ति नही है । पूजा के अर्थ हम बना देते है मूर्ति और उसमे तदाकार आकार या अतदाकार स्थापना भी करते है । उससे क्या ? यहां तो धर्म की बात चल रही है । श्री सिध्द भगवान के अमूर्तत्व धर्म को यहां नमस्कार किया है ।

स्थूल रुपसे तो यूं कहा जाता है कि, अमूर्त द्रव्यों का भाव अमूर्तत्व है । क्या होता है अमूर्तत्व भाव ? अस्पर्शी होना, अरस होना, अगंध होना और अवर्ण यह अमूर्तत्व भाव है । मूर्तत्व क्यों होता है ? जिस कारण जीव मूर्त हो गया तो जीव अमूर्त हुआ । इसलिये कहते है कि, जो पदार्थ जीवों के इंद्रिय ग्राहय विषय है वे मूर्त है और शेषपदार्थ समूह अमूर्त है । शास्त्रों मे कहा गया है कि, कर्म बंध कि अभाव से व्यक्त किये गये सहज स्पर्शादि शून्य ऐसा आत्म प्रदेश स्वरुप अमूर्तत्व शक्ति है । सिध्द जीव सर्व कर्म रहित होने से अमूर्त है ।

ज्ञान यह सिध्दोंका धर्म है ऐसा समझकर यहां ज्ञानको नमस्कार किया है । ज्ञान क्या करता है ?

पदार्थ जैसा है वैसा जानता है । ज्ञान मात्र भाव के साथ जो भी लक्षित होता है वह सब आत्मा है ।

ज्ञानकी बात करते करते बीच मे आत्मा कैसा आया ? समाधान यूं है ज्ञान किसका लक्षण है ? आत्माका ।

ज्ञान वह लक्षण ऐसा लक्ष्यमे लेने से उसका लक्ष्य भी साथ ही लक्षमे आ जाता है । ज्ञान वह आत्मा ऐसा कहने से लक्ष्य लक्षण का भेद पडता है तथापि, आत्मा और ज्ञान दोनों को जाना तभी ज्ञानको लक्षण और आत्मा को लक्ष्य कहा गया न ? लक्ष्य को पहचान ने से पूर्व यह लक्षण इसका है ऐसा किस प्रकार निश्चित् किया ? इसलिए लक्षण और लक्ष्य (ज्ञान और आत्मा) यह दोनों एक साथ ही जाने जाते हैं । ज्ञान लक्षण का कार्य आत्मा को प्रसिध्द करता है , परंतु वह राग को नहीं प्रसिध्द करता । मै आत्मा हूं ऐसा ज्ञान लक्षण बतलाता है।

पहले लक्षण - लक्षण के भेदका विकल्प उठता है, तथापि उस विकल्पकी ओर ज्ञानका जोर नहीं है किन्तु अभेद आत्मा को लक्ष्ममे लेनेकी ओर ही ज्ञानका जोर हूं । अभेद आत्माको लक्ष्यमे लेनेसे वह भेद का विकल्प भी टूट जायेगा और मात्र लक्ष्यरुप आत्माका अनुभव रह जायेगा । अधिक क्या कहें ? ज्ञान अपार हूं ।

शुध्द ज्ञानमय धर्म जिन्हों ने धारण किया उन अमित महिमाधारी सिध्दों को हम मन, वचन, कायसे नमस्कार करते है ।

ओम -हिं समकितधर्माय नम: ५-१०-१३०

ओम -हिं जीवधर्माय नम: ५-१२-१३२

ओम -हिं सूक्ष्मधर्माय नम: ५-१३-१३३

तत्त्वार्थश्रद्धानम् सम्यग्दर्शनम् ऐसा क्यों कहा है ? योगसार नामका अध्यात्म ग्रंथ है । उसमें कहा है स्वस्वभावबुभुत्सया अर्थात् स्वस्वरुप ज्ञान की

अभिलाषा से जीव और अजीब दोनों के लक्षण जानना चाहिए । समयसार मे भी कहा है, सम्यक्त्व के आश्रय या निमित्त होने के कारण व्यवहार से नव पदार्थ सम्यक्त्व कहे जाते है । तत्त्वार्थाश्रद्धानापेक्षया ऐसा परमात्मप्रकाश ग्रंथ मे कहा है । आगे कहते है, चल, मलिन, अवगाढ इन दोषों के परिहार द्वारा शुद्धात्माही उपादेय है ऐसी रुचि करते हुए निश्चय करता हैं ।

प्र - मुमुक्षु जीव को क्या अभिलाषा नहीं होती है ?

उ - मुमुक्षु जींव को किसी भी प्रकार की अभिलाषा नहीं होती ; फिर भी अगर होती हैं तो स्वस्वरुप ज्ञान की ही होती है ।

प्र - स्वरुप यह शब्द ही पर्याप्त होता है ; स्वस्वरुप ऐसा क्यों ?

उ - स्वरुप तो तुम्हारा भी है । स्वरुप तो मेरा भी है । सबका हैं । किन्तु जो साधक सम्यक्त्व का अभिलाषी है , उसको स्वयं का, दूसरे जीव का नहीं, अपनें स्वयंका आत्मा ही उपादेय है यह बताने के लिए कहा है ।

शास्त्रोंमें तो यहांतक कहा है कि, केवल तत्त्वार्थ को जाने वह सम्यग्दर्शन नहीं है । किसी जीव ने अजीव, धर्म, अधर्म आकाश इ. द्रव्य जान लिए तो केवल इतने से सम्यग्दर्शन नहीं हुआ । जिसे जानने से अपनें आपकी खबर पडे मै इन धर्माधर्म द्रव्यादि से भिन्न हुं ; और मेरा जो आत्मा है वही उपादेय है । इतना जाननें के बाद सम्यग्दर्शन हुआ । सोचने की बात यह है कि सम्यक्त्व यह बहुत हि महत्व का गुण है उसकी चर्चा आगे अनेको बार आनेवाली हैं ।

रण, चरण और आचरण इन तीनों शब्दों को तो आप जानते ही है । प्रारंभिक अवस्था मे शुभ-अशुभ भावों का रण युध्द होता ही है । जब भवितव्य निखर आता है तो चरण आगे बढते है और जब आचरण होता है तो सम्यक् होता है । आचरण नहीं तो कुछ नहीं ।

अब जीव धर्म की बात आती है । राजवार्तिक मे कहा है , दश प्राणोंमें से अपनी पर्यायानुसार गृहित यथायोग्य प्राणों के द्वारा जो जीता है, जीता था और जीवेगा इस त्रैकालिक जीवन गुणवाले को जीव कहते है ।

प्रश्न - यह लक्षण करने से सिद्धों के जीवत्व घटित नहीं होता ?

उत्तर - सिद्धों के यद्यपि दश प्राण नहीं है फिर भी वे इन प्राणों से पहिले जीये थे इसलिए उनमे भी जीवत्व सिद्ध हो जाता है ।

प्रश्न - सिद्ध वर्तमान में नहीं जीते । भूतपूर्व गति की अपेक्षा से उनमे जीवत्व कहना औपचारिक है ?

उत्तर - यह कोई दोष नहीं है ; क्योंकि भाव प्राण रुप ज्ञान दर्शन का अनुभव करने से वर्तमान मे भी उनमें मुख्यतया जीवत्व है । जीव धर्म है, वह कभी छूटता नही ।

कितनी खुशी की बात है कि हम सिद्धो के गुणों की चर्चा कर रहे है । विकार बढाने की बातें करना सुलभ है किंन्तु उसमे आत्महित दुर्लक्ष है । यहां सूक्ष्म धर्म की चर्चा है । धर्म की सूक्ष्म चर्चा है । आत्म हित होगा ।

सिद्धों मे सूक्ष्म अतींद्रिय केवलज्ञान का विषय होने के कारण सूक्ष्मत्व है । तथा अतींद्रिय ज्ञान का विषय होनें से सूक्ष्मत्व है ।

निश्छिद्र लोहे के मकान से जिसमे वज्र के किवाड लगे हो और वज्रलेप भी जिसमे किया गया हो ; मरकर जीव कार्यण शरीर के साथ निकल जाता है । देखो कितनी सूक्ष्म बात है ।

एक शास्त्र मे हमने पढा है ; मरने के बाद जीव शरीर से निकल जाता हैं लेकिन उसका निकलना काहां से होता है ? इसकी वैज्ञानिकों ने खूब छानबीन की, किंतु कुछ नहीं मिला तो इसके संबंध मे हमने पढा है , मरण काल में तैजस शरीर और कार्मण शरीर इनके साथ जीव वज्रमय कमरे से भी निकल जाता है ।

जिनकी भक्ति के वश होकर हम इतनी सूक्ष्म चर्चा कर रहे है , उन सिद्ध परमात्मा को हम भक्तिभाव से नमस्कार करते है ।

ॐ -हिं अवगाहधर्माय नम: ५-१४-१३४

ॐ -हिं अव्याबाधधर्माय नम: ५-१५-१३५

ॐ -हिं स्वसंवेदनज्ञानाय नम: ५-१६-१३६

ॐ -हिं स्वरुपतापतपसे नम: ५-१७-१३७

ॐ -हिं अनंतचतुष्टयाय नम: ५-१८-१३८

ॐ -हिं सम्यक्त्वादि गुणात्मक ५-१९-१३९
सिध्देभ्यो नम:

अेक सिद्ध के क्षेत्र मे संकर तथा व्यतिकर दोष से रहित जो अनंत सिद्धों को अवकाश देने की साम्यर्थ्य है । क्या होता है संकर दोष ? स्याद्धादियों के मत अस्त्वि और नास्तित्व एक जगह रहते है । इसलिए अस्तित्व के अधिकरण मे अस्तित्व और नास्तित्व के स्याद्वाद मे रहने से और नास्तित्व के अधिकरण मे नास्तित्व और अस्तित्व के रहने से संकर दोष आता है । (ऐसी शंका मे संकर दोष का स्वरुप प्रकट होता है) पदार्थ जिस स्वभाव से सामान्य है उसी स्वभाव से विशेष है और जिस स्वभाव से विशेष है उसी से सामान्य है अनेकांत बाद मे

यह बात दर्शकर नैयायिक लोक इस सिद्धांत में व्यतिकर दोष कहते हैं। ये सूक्ष्म तत्वज्ञान की बाते हैं।

सिद्धोंका सुख स्वाधीन है । उसके लिए किसी का आधार होना आवश्यक नहीं है। क्यों ? जिन कर्मो से पराधीनता आती है, उन सब कर्मो का अंत होने से स्वाधीन सुख है। स्वाधीन होने से कोई बाधा डाल नहीं सकता । क्यों कि सिद्ध जीवों मे अनंत सामर्थ्य होता है । लोकिंक मे यूं कहा जाता है कि साता वेदनीय का उदय होता है तो सुख होता है । इसके आश्रय से यहां शंका होती है कि, सिद्ध जीवों को तो साता वेदनीय का उदय नहीं रहा, फिर उन्हें सुख काहं रहा ; वास्तव मे देखो तो कर्मोदय से अनुभव मे आनेवाला सुख है वह नहीं होता और इंद्रियजन्य होता है । यहां तो शाश्वत और इंद्रियातीत सुख की चर्चा चल रहीं है । आत्मा के आश्रय से कर्म नाश होनेपर जो सुख होता है, उसमे कभी बाधा आ सकती । ऐसी अलौकिक बात है ।

स्वसंवेदन केसंबंध मे तत्वानुशासन में कहा है, स्वसंवेदन आत्मा के उस साक्षात् दर्शनरुप अनुभव का नाम है, जिसमें योगी आत्मा स्वयं ही ज्ञेय तथा भाव को प्राप्त होता है ।

एक शास्त्र मे कहा है, स्वसंवेद ज्ञान से उत्पन्न सुखामृत जल से परिपूर्ण परम योगियों को जैसा अन्य को नही होता। सुखामृत जलेन ऐसा शब्द आया है। सुख यह अमृत है, लेकिन कब ? जब वह स्वसंवेदन ज्ञान से उत्पन्न हो ।

अमृत के दो अर्थ है । एक जो मृत नहीं हो वह । मृत होना इसका भाव है, चैतन्यहिन होना । ज्ञान दर्शनरुप चेतना निकल गई। मृत हुआ ।

जब संवेदन ज्ञान से सुख होता है तो वह चैतन्यहीन नही होता । दूसरा अर्थ शाश्वत है। स्वसंवेदन ज्ञान से जो सुख होता है वह क्षणिक नहीं ।

अमृत से अमृतचंद्राचार्य की याद आई। अमृत को उन्होंनें कलश मे भर दिया । व्याप्तस्य मोहं हठात् ऐसा कहते है। परमकृपालु मुनीश्वर कहते है, भाई, अपनें त्रिकरणरुप जबरदस्त पुरुषार्थ के मोह को दूर कर अंतरंग मे अभ्यास कर । मोह को अरि क्यों कहा है इसकी चर्चा पहिले भी आई है। मोह जलदी हटता नही इसलिए हठात् कहा है। कठिन पुरुषार्थ से ही मोह दूर होता है ।

अंतरंग मे अभ्सास करना निजात्मा को देखता है । क्या पद्धति है आत्मा को देखनें की ? प्रवचनसार मे कहा है रागादि विकल्परहित परमसमाधिना । वही स्वसंवेदन है। अधिक क्या कहे ?